Chap-2

-: द्वितीय अध्याय :-

"युगगत जीवन-मूल्यों का विश्लेषण"

M. S. UNIVERSITY OF BARODA UNIVERSITY LIBRARY

पूर्व-पीठिका :-

जीवन-मूल्यों के विकास में युगीन परिस्थितियां तथा वातावरण उत्तरदायी होते हैं । आज युग परिवर्तन के साथ ही जीवन-परिस्थितियाँ बदल रही हैं । मनुष्य की अनुभूतियां और संवदेनशीलता बदल रही है । नये युग-बोध ने समाज के प्रतिमान तथा उपन्यास परखने के प्रतिमान बदल दिये हैं । जीवन की परिस्थितियों के साथ साथ जो मूल्य परिवर्तित होते हैं, उसे हम नवीन मूल्यों की संज्ञा देते हैं, जो आज के उपन्यासों में अभिव्यक्त हैं । आज के उपन्यासों में नये जीवन की खोज है । उसमें सूक्ष्म गहराई के साथ विस्तार है । मोह भंग की अनुभूति है , और गहरा अन्तर्द्वंद्व है । समसामयिक उपन्यासों में मनुष्य की टूटन और सर्जन की संचेतना का वर्णन है ।

आलोच्य कालीन उपन्यास साहित्य के मूल्यांकन में इस तथ्य को लक्ष्य कर लेना आवश्यक है कि प्रत्येक युग की उपलब्धियां तथा जीवन धारणायें अपने मूल में पूर्ववर्त्ती युग से नितान्त असम्बद्ध या कटी हुई नहीं होती है । किसी न किसी रूप में वह पूर्ववर्त्ती चेतना का परिणामहोती हैं । यह परम्परा की सम्बद्धता के रूप में भी हो सकता है और कभी परम्परा की प्रक्रिया के रूप में भिन्नता लिए भी हो सकता है । किन्तु यह प्रक्रिया या भिन्नता की प्रवृत्त्ति भी प्रत्यक्ष रूप में नहीं तो अप्रत्यक्षत: पूर्व परम्परा से कहीं न कहीं जुड़ती है । अत: युग विशेष के उन प्रमुख संस्थओं तथा व्यक्तियों को जीवन - दर्शन को भली-भांति समझने के लिए पूर्ववर्ती प्रसंगों पर सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक होगा । क्योंकि इनके प्रभाव ने जीवन-मूल्यों को प्रभावित किया है ।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक अंग्रेज़ों का आधिपत्य एक प्रकार से सॅम्पूर्ण भारतवर्ष में छा गया था , और ईसाई अपने धर्म का प्रचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक व्यापक रूप से कर रहे थे । इसके परिणाम स्वरूप तत्कालीन भारतीय जन-जीवन पर राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक ,नैतिक एक सांस्कृतिक क्षेत्रों में नव-जागरण की अनेकविध नयी चेतना से भारतीय

समाज में नवीन जीवन-मूल्यों का आर्विभाव होने लगा । सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम ने राजनैतिक दृष्टि से एक ऐसा विस्फोट किया , जिसने देश-वासियों की आँखें खोल दीं और भारत के लिए स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि तैयार की । 1885 ई0 में "इण्डियन नेशनल कांग्रेस" की स्थापना से राजनीतिक क्षेत्र में नया आयाम प्रस्तुत हुआ ।

इस शताब्दी में किए गये विभिन्न सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन तत्कालीन परिस्थितियों का परिणाम थे । राजा राम मोहन राय ने समन्वयात्मक दृष्टिकोण को ग्रहण करके पूर्व एवं पश्चिम के स्वस्था विचारों को अपनाया । इन्होंने पाश्चात्य संस्कृति की वैज्ञानिकता भौतिकवादी दृष्टि को स्वीकार किया और साथ ही साथ बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार जीवन-दर्शन तथा जीवन-मूल्यों पर बल दिया । हमारी भारतीय सांस्कृतिक चेतना ने यूरोपीय श्रेष्ठ तत्वों का समाहार किया और आध्यात्मिक व धार्मिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन करते हुए व्यक्ति को उसके दायित्व तथा कर्तव्य भावना की ओर प्रेरित किया । राष्ट्रीय चेतना के साथ मानवतावादी भावनाओं को प्रश्रय दिया ।[1] उन्होंने ब्रह्म समाज" द्वारा एक ओर हिन्दुत्व को भर्त्सना से बचाया , ईसाईयत से देश की रक्षा की , और यूरोपीय क्रान्तिकारी बुद्धिवादी विचारों को ग्रहण कर जागृति की लहर दौड़ाई , स्त्रियों की स्थिति सुधारने हेतु "पर्दा-प्रथा" बाल-विवाह, बहु-विवाह जैसी कुप्रथाओं को मिटाने की भरसक कक चेष्टा की"[2] "वे धार्मिक सुधारक कम सामाजिक सुधारक अधिक थे । उन्होंने जो कुछ किया उसे सांस्कृतिक राष्ट्रीयता का कार्य कह सकते हैं ।"[3] वे सांस्कृतिक जागरण के अग्रदूत रहे ।

केशव चन्द्र सेन और कविवर रवीन्द्र ने सर्व धर्म समन्वय तथा विश्व मानवता वाद का समर्थन किया । वे ईसाई धर्म से प्रभावित जरूर थे, परन्तु भारतीय संस्कृति और धर्म की पुनर्स्थापना भी करना चाहते थे । अतः

ब्रह्म समाज ने जीवन-मूल्यों के सामयिक स्वरूप पर भी ध्यान दिया और सुधार करके भारतीय स्वस्थ परम्पराओं का निर्माण किया ।

प्रार्थना समाज की स्थापना महादेव गोविन्द रानाडे के नेतृत्व में हुई । इस समाज ने ब्रह्म समाज की ही भाँति युगानुकूल भारतीय आदर्शों, प्रतिमानों तथा राष्ट्रीय भावनाओं और सामाजिक एकता पर विशेष बल दिया । मानव सेवा को ईश्वरीय सेवा मानकर समाज सेवा की ओर उन्मुख होते रहे । समाज में स्वस्थ जीवन-मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया ।

स्वामी दयानन्द ने "आर्य समाज" के द्वारा हिन्दू समाजमें फैली कुरीतियों, कुप्रथाओं तथा रूढ़ियों को दूर किया तथा देश में स्वस्थ परम्परागत जीवन-मूल्यों की स्थापना की । उन्होंने देश के पीड़ित निम्न वर्ग के उत्थान के साथ ही नारी शिक्षा तथा उसके साम्पत्तिक अधिकारों को प्राप्त कराने का अभियान चलाया और समानता के अधिकारों की ओर ध्यानाकर्षित कराया । हिन्दू समाज में आदर्श मूलक सुधारवादी दृष्टि को अपनाते हुए निरर्थक मान्यताओं तथा संकीर्णताओं का बहिष्कार किया । वे सही रूप में वैदिक जीवन मूल्यों की पुनर्स्थापना करना चाहते थे । यही कारण है कि इस प्रकार सामाजिक चेतना ने व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा राष्ट्रप्रेम के मूल्यों का प्रादुर्भाव किया । इसके परिणामस्वरूप आज भी आर्य समाज वैदिक मूल्यों को जीवित रखे हुए हैं । "आर्य समाज का आन्दोलन केवल भद्र लोक के सीमित घेरे में बंद नहीं रहा वरन् उसने विशाल जनता का हृदय से स्वागत किया । .... आर्य समाज केवल आन्दोलन ही नहीं वरन् लाखों व्यक्तियों का धर्म ही बन गया ।" [4] अतः स्वामी जी ने आत्म विकास तथा आत्मसुधार पर विशेष बल दिया ।

उनका "सत्यार्थ प्रकाश" ग्रन्थ समाज का आचार ग्रन्थ है । इसमें मूर्ति-पूजा का खण्डन, दूषित परम्पराओं का शुद्धीकरण , जाति पुनरूत्थान और एकेश्वरवाद की स्थापना की है । इन्होंने सत्य को जीवन का मूल्य माना ।

इसके परे और कुछ भी नहीं है ।[5] इसी प्रभाव के कारण आधुनिक साहित्य में आर्य समाज की अमिट छाया परिलक्षित है और जीवन-मूल्यों के विकास में विशेष योगदान रहा । इन्हीं कारणों से उनके आदर्शों तथा संकल्पों को समाज में मान्यता दी जा रही है ।

भारतीय समाज में मानवतावादी जीवन-मूल्यों को लेकर रामकृष्ण परमहंस तथा विवेकानंद आये । इन्होंने अपने अनुभूत जीवन सत्य को जनता के संमुख रख । "राम कृष्ण और विवेकानंद एक ही जीवन के दो अंश एक ही सत्य के दो पक्ष हैं । राम-कृष्ण अनुभूति थे, विवेकानंद उनकी वयाख्या बन कर आये ।"[6] इन्होंने समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता को ध्यान में रखकर समाज की सेवा की । भौतिकवादी देशों को आत्मिक विकास के लिए आध्यात्मिक जीवन-मूल्यों का पाठ सिखाया । भारतीय निज गौरव, कर्तव्य निष्ठता और अपनी संस्कृति व सभ्यता पर बल देते हुए भारतीय आदर्श को विश्व के सम्मुख रख । "इन्होंने चेतना को लोकान्मुख किया और वेदान्त को मायावाद से मुक्त कर कर्म के असंख्य मार्ग प्रशस्त किये । पश्चिमी मानवता वाद को एकांगी और आंशिक बताकर वे आध्यात्मिक नव जागरण के अग्रदूत बन गये ।"[7] नि:सन्देह उनकी गणना राष्ट्र के उन निर्माताओं में की जा सकती है , जिनके प्रयत्नों से देश का भाग्य ही बदल गया ।[8] स्वामी विवेकानन्दजी ने भारतीय परम्परा का निर्वाह धर्मशास्त्रों के अध्ययन के पश्चात किया । अत: हम कह सकते हैं कि उन्होंने धर्म शास्त्रों की खोज और प्रचार कर जीवन मूल्यों के प्रति भी पूर्ण आस्था तथा पूर्ण आगरूकता दिखाई ।[9] इससे देश प्रेम तथा देश गौरव जैसे मूल्यों की सृष्टि हुई ।

थियासाफीकल सोसायटी के प्रचारकों ने भी आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों का प्रयार समाज में व्यापक रूप से किया । इसके प्रवर्तकों ने भातृ-भावना को विकसित करते हुए, सामाजिक गली-सड़ी परम्पराओं का कड़ा

विरोध किया । भारतीय दर्शन तथा धार्मिक मूल्यों की स्थापना पर जोर दिया । इससे विश्व कल्याण, विश्वबंधुत्व तथा मानवतावादी जीवन-मूल्यों को प्रश्रय मिला । "प्राचीन हिन्दू धर्म और संस्कृति के मुख्य तत्वों और विशेषताओं के गौरवमय स्वरूप को सामने रखकर, इस संस्था ने अँग्रेज़ियत का दम भरने वालों को अपने समाज के सत्स्व रूप को देखने और सोचने को बाध्य किया । इसका परिणाम यह हुआ कि अपने देश और संस्कृति के प्रति अनुराग और गर्व जागा और धीरे धीरे पाश्चात्य सभ्यता को सर्वोत्तम समझने की प्रवृत्ति हटने लगी ।[10] इन तीनों का मुख्य लक्ष्य था, प्राचीन भारत का पुनरूत्थान करना और स्वस्थ जीवन-मूल्यों का निर्माण करके भारतीय संस्कृति की स्थापना । इन सभी समाज सुधारकों ने जातीयगत रूढ़ियों का त्याग करते हुए ,हिन्दू धर्म का संशोधन किया और एक नवीन राष्ट्रीय चेतना का उद्घोष करते हुए, पारस्परिक मूल्यों व एकता को शक्ति दी । अतः इन सामाजिक आन्दोलनों का दृष्टिकोण था, स्वाधीनता प्राप्त करना और भारतीय परम्पराओं का युगानुरूप परिवर्तन करके , उसे युगसापेक्ष बनाना । भारतीय समाज सुधारकों ने धर्म ,दर्शन, अध्यात्म को राष्ट्रीय चेतना से समन्वित किया तथा पाश्चात्य संस्कृति की वैज्ञानिक और भौतिकवादी विचारधारा को ग्रहण करते हुए भारतीय चिन्तन से जोड़ा । साथ ही उन्होंने पूर्व और पश्चिम के प्रगतिशील तत्वों को ग्रहण किया और उसके मूल में भारतीय सभ्यता और संस्कृति की पुनर्स्थापना करने का प्रयास किया ।

तत्पश्चात , बीसवीं शताब्दी में जीवन-मूल्यों पर गांधीवादी प्रभाव पड़ा । इन्होंने भारतीय, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में युगान्तकारी नवचेतना उद्बुद्ध करके , युगानुरूप जीवन-मूल्यों की स्वरूप की स्थापना की । "गांधी युग के आते आते यह सांस्कृतिक, राष्ट्रीयता, राजनीतिक, राष्ट्रीयता में परिणित और विकसित हुई । धार्मिक, सादगी , नर-नारी समानता, गृह उद्योग , राष्ट्रवादी , शिक्षा की व्यवस्था , मानवतावाद,

अहिंसा, समन्वयवाद आदि इस नवीन सांस्कृतिक चेतना के प्रमुख अंग थे ।"[11] गांधीवाद ने सर्वधर्म समन्वय की भावना पर जोर दिया तथा मानवीय आदर्शों और नैतिक मूल्यों की स्थापना की । सत्य, प्रेम, समानता, दया ,करूणा, त्याग, न्याय, बन्धुत्व आदि आश्वत् मूल्यों का प्रचार किया ।

अतः आलोच्य कालीन समाज सुधारकों ने समाज में असामाजिक,अमानवीय तथा सभी प्रकार के भेदभाव व पतनोन्मुख व्यवस्थाओं का नवोत्थान किया और समाज को स्वस्थ एवं कल्याणाकारी मूल्य प्रदान किये । इन्होंने सर्वत्र विश्व शान्ति और मानव कल्याण की मंगल कामना की । यह उल्लेखनीय है कि उन्होंने सामयिक जीवन और युग की हलचलों से शाश्वत स्पंदनों को अपनाया । देश और काल से परे चिन्तन साहित्य के जीवन-मूल्यों को ग्रहण किया । इसी लिए युग प्रभाव ने तत्कालीन परिस्थितियां व संदर्भों को ग्रहण किया । जीवन के शाश्वत मूल्यों को समझने का प्रयास किया ।

बीसवीं शताब्दी में युग परिवर्तन के साथ आज के बदलते हुए मानदण्ड और जीवन दृष्टि ने नवीन मूल्यों व परम्पराओं को जन्म दिया , वह सामाजिक चेतना थी । इसने व्यक्ति के अवचेतन मन में व्यक्ति स्वातन्त्र्य और समानता की भावना के बीज अंकुरित किये ।[12] इस सदी के दो दशकों में धर्म की प्रधानता के कारण जीवन दर्शन और व्यक्ति विशेष के संस्कारों में विशेष अन्तर नहीं आया ।[13] सत्य, दान, तप, आदर्श, प्रेम, वीरता, धैर्य, त्याग, दया , अहिंसा आदि मूल्य द्वंद्वात्मक स्थिति में थे । समाज के शोषित वर्ग और नारी स्वातंत्र्य भावना को लेकर आन्दोलन पर बल दिया जाने लगा था ।[14] वैदिक काल से प्रतिष्ठित मूल्य इस परिवेश में आकर टूटने लगे । और बाह्य रूप से शान्त दृष्टिगोचर होते थे, परन्तु आन्तरिक रूप से तनाव और अनिश्चितता की विचारधारा से सक्रिय, नारी स्वातंत्रता और मजदूरों के समान अधिकारों की मांग से नवीन मूल्यों की स्थापना हुई ।[15] इस युग में स्वतंत्रता, स्वच्छन्द प्रेम, उन्मुक्त यौन संबंध, आर्थिक विषमता की अभिवृत्तियों से संबंधित मूल्यों को अनुदान मिला ।

निष्कर्ष :-

पूर्ववर्त्ती पृष्ठों के आधार पर कहा जा सकता है कि उन्नीसवी शताब्दी के समाज-सुधारकों ने तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर कुछ विदेशी स्वस्थ विचारों को ग्रहण करके जनता के सम्मुख रखा । इनके रचनात्मक कार्यों द्वारा भारतीय परम्परागत मूल्यों में कुछ हद तक सुधार हुआ तथा भारतीय जन-जीवन के संस्कारों में विकास हुआ ।

उपर्युक्त विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि समाज सुधारकों ने समाज में सांस्कृतिक मूल्यों के महत्त्व को प्रतिपादित करके अपनाया, किन्तु जन-साधारण पर पूर्णत: छाप नहीं पड़ पाई और तदन्तर परम्परा का प्रभाव भी बना रहा मानवता, लोकहित, दायित्व बोध, सत्य, त्याग, न्याय,करूणा, सहानुभूति आदि शाश्वत् जीवन-मूल्यों को ग्रहण करने पर ज़ोर दिया ।

यहाँ यह देख लेना आवश्यक है कि युगीन पूर्व की स्थिति ने परम्परागत भारतीय जीवनमूल्यों को कितनी सीमा तक प्रभावित किया । अत: उस समय की जीवनगत परिस्थितियों को समझ लेना भी आवश्यक होगा ।

-::-

"पूर्व-युगीन - जीवन-मूल्य "

पूर्ववर्ती विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी का प्रारम्भिक काल पुनर्जागरण के प्रभाव का है । इसका उत्तरार्द्ध विविध मूल्य-परिवर्तनों, आन्दोलनों , प्राचीन तथा नवीन के द्वन्द्वों का जन्मदाता है । एक ओर तो समाज में परम्परागत मूल्य विद्यमान थे तो दूसरी ओर उन्नीसवीं शताब्दी में हुए सांस्कृतिक पुनर्जागरण द्वारा प्राप्त नये मूल्य-मानवता,समानता, सर्वधर्म समन्वय, लोकहित, राष्ट्रीयता या देश-प्रेम, स्वतंत्रता,नैतिक तथा आचरण संबंधी मूल्यों पर बल दिया जा रहा था ।[16] परिणामतः यह काल "संशोधन और नव-चेतना" का कहा जा सकता है ।[17] संशोधन और जागरूकता से परम्परागत जीवन-मूल्यों में सुधार हुआ और उन्हें अपनाया गया । इसके अतिरिक्त जीवन मूल्यों पर पाश्चात्य प्रभाव भी परिलेक्षित रहा ।[18] यही कारण है कि उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के पराधीन भारतीय समाज में परम्परागत निष्क्रिय और अवरुद्ध जीवन-मूल्यों को विभिन्न समाज-सुधारकों, आधुनिक परिस्थितियों, शिक्षा, वैज्ञानिक प्रगति, गांधीवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा तथा प्रथम और द्वितीय महायुद्धों के परिणाम से विकसित नवीन दृष्टि ने प्रभावित किया ।

वस्तुतः स्वातंत्र्योत्तर काल में सत्य, अहिंसा, मानवता, सर्वधर्म, दया, करूणा, आदि जीवन मूल्यों को अपनाने पर आग्रह था । जबकि महायुद्धोत्तर काल ने वैयक्तिक मूल्यों को यथार्थवाद की भाव-भूमि पर ला खड़ा किया । फलतः निराशा , उत्पीडन, उद्देश्यहीनता, आतंक, अनुशासनहीनता, अनैतिकता आदि दुर्बल उत्पन्न होने लगी । जिनके कारण सन् 1960 तक आते- आते समाज में संयमहीनता, भ्रष्टाचार,निर्मुक्त काम आदि की प्रवृत्तियां बढ़ने लगीं । परिणामतः दया, धर्म, त्याग, दायित्व, पवित्रता, सहनशीता, शान्ति, अहिंसा आदि के मानदण्डों में अन्तर आने लगा , जिसका प्रभाव सामाजिक,

आध्यात्मिक , नैतिक तथा राजनैतिक मूल्यों पर पड़ा, हालांकि यह परिवर्तन धीमी गति से प्रारम्भ हुआ । इस प्रकार एक ओर सांस्कृतिक विघटन हो रहा था , तो दूसरी ओर नवीन मूल्यों की सृष्टि होने लगी । कुल मर्यादा, राजा-महाराओं , सामन्तों, और ज़मींदारों के शोषण का पतन तथा राजनीतिक तथा वैज्ञानिक प्रगति से अन्य अभिवृत्तियों का जन्म हुआ । कह सकते हैं कि उक्त विवेचित मूल्यों का बीजांकुर तो सन् 1960 से पहले ही हो चुका था, किन्तु ये मूल्य सन् 1960 के बाद ही पूर्णतः विकसित और परिवर्तित हुये, जिनकी व्याख्या हम आगे करेंगे ।

यह निर्विवाद है कि पूर्णयुगीन जीवन-मूल्य ,रुढ़ियां, रीति-रिवाज़, विश्वास, नैतिक, सामाजिक बंधन तथा सांस्कृतिक आदि तत्त्व इस युग में आधुनिकता के बोध के कारण, फीके अवश्य पड़ने लगे थे, किन्तु परम्परागत जीवन-मूल्यों, मान्यताओं तैथा धारणाओं के प्रति मोहभंग नहीं हो पाया है था । इसलिए इस युग को मूल्यों के टकराव का काल न कहकर नये मूल्यों के विकास के आभास मात्र का काल कह सकते हैं । इसका मूल कारण यह भी था कि व्यक्ति पुराने सामाजिक बंधनों से त्राण पाने कीचेष्टा करने लगा था , और अन्य बदलती हुई जीवन परिस्थितियों के साथ शनैः शनैः नये मूल्यों की ओर आकर्षित हो रहा था । परन्तु व न तो पुराने जीवन-मूल्यों को त्याग पाता और न ही उन्हें ग्रहण कर पाता था । अतः इस काल को पूरी तरह से दुविधात्मक मनस्थिति का काल भी नहीं कहा जा सकता ,क्योंकि व्यक्ति का पराम्पराओं के प्रति लगाव ज्यों का त्यों भी बना हुआ था । समाज में विधवा-विवाह, तलाक, एवं अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन कानूनी तौर पर किया जा रहा था, तथा जातिगत व्यवस्था, बाल विवाह, आदि पर कानूनन भी रोक थी, तथापित यह सब सामाजिक जीवन में व्यवहारिक न बना था। संक्षेप में कहा जा सकता है कि साठोत्तर पूर्व जीवन-मूल्यों में परिवर्तन की वह स्थिति उतनी नहीं आई थी, जितनी , साठोत्तर युग के पश्चात म। सृ

सन् 1960 के पश्चात् उक्त तथ्यों को सहज रूप से व्यवहार में लाया जाने लगा। जिनका प्रभाव हमारे जीवनादर्शों, प्रतिमानों, सद्वस्तुओं एवं रूढ़िग्रस्त संस्कारों पर व्यापक रूप से पड़ने लगा।

युगगत जीवन-मूल्य (1960 के बाद)

पूर्वनिर्दिष्ट पृष्ठभूमि के साथ यदि हम युगगत जीवन मूल्यों की निर्मात्री प्रवृत्तियों पर विचार करें तो हमें भारतीय समाज के विविध जीवन-पक्षों पर एक व्यापक-फलक पर विचार करना होगा। परवर्ती विवेचन से इसे विस्तार से लक्ष्य किया जायेगा, किन्तु वस्तु स्थिति के यथोचित अनुशीलन के लिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि साठोत्तर युग में ये विविध जीवन-मूल्य अपनी पूर्व-पीठिका से किस प्रकार प्रभावित, सम्बद्ध तथा कहीं कहीं नितान्त भिन्न हैं। जिसे यहाँ संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

"व्यक्तिगत मूल्य"

यह दृष्टिगत किया जा चुका है कि पूर्ववर्ती युग में व्यक्तिगत मूल्यों का योगदान समाजगत मूल्यों के निर्माण व विकास में सहायक माना जाता रहा। व्यक्तिगत मूल्यों का निर्माण और विकास उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राम मोहन राय की समन्वयात्मक दृष्टि से होने लगा था। राष्ट्र-प्रेम, नारी के प्रति उदारता, विश्व बंधुत्व और सांस्कृतिक मूल्यों पर बल दिया गया। बीसवीं शताब्दी के आते आते भारतीय समाज में श्री रामकृष्ण परहंस तथा विवेकानंद ने मानवतावादी जीवन-मूल्यों पर बल दिया। अतः नारी के महत्त्व की प्रतिष्ठा, मानवता, व्यक्ति समानता, सर्वधर्म समन्वय, दया, करूणा, सहानुभूति, आदि मूल्य विकसित हुए। दो महायुद्धों के परिणाम से व्यक्ति मन में निराशा, उत्पीड़न, आतंक, भय, कुण्ठा आदि दुर्बल प्रवृत्तियों की सृष्टि हुई। जिसके फलस्वरूप व्यक्तिगत मूल्यों में परिवर्तन आया। यह कहा जा सकता है कि सन् 1960 ई० के पूर्व सेवाभाव, ईमानदारी, सच्चाई, भलाई का

महत्व घटने लगा और व्यक्ति व्यक्ति में मेल-मिलाप व भाईचारे की भावना, दु:ख-दर्द में सम्मिलित होने की सद्भावना जो विद्यमान थी, वह व्यक्ति स्वातंत्र्य के कारण टूटने लगी । उसके आत्म सम्मान का स्थान निजी स्वार्थ ने ले लिया और व्यक्ति आत्म केन्द्रित हो गया । कहा जा सकता है कि सनx 1960 ई0 के पश्चात् यह व्यक्ति चेतना इतनी बलवती होती जा रही है कि जिसका प्रभाव दाम्पत्य जीवन तथा सामाजिक मूल्यों पर पड़ा । यही कारण है कि आज हमारे जीवनादर्शों को व्यंग्य तथा संयम को दकियानूसी माना जाने लगा है । जिसका प्रभाव हमारे आध्यात्मिक और व्यक्तिगत मूल्यों पर पड़ा, जिससे आज का जीवन अनेक विसंगतियों के साथ परिलक्षित होता है ।

आध्यात्मिक मूल्य :-

जैसाकि ~~कुर्ककके~~ पूर्ववर्ती विवेचन से प्रकट है कि सुधारवादी आन्दोलन ने आध्यात्मिक मूल्यों की स्वीकृति में आध्यात्मवाद के साथ साथ लौकिक जीवन को स्वीकार किया, जबकि राजा राम मोहन राय ने एकेश्वरवाद की स्थापना करके ईश्वर की स्थान पर -"मानवसेवा को सर्वोपरि माना । स्वामी दयानंद सरस्वती ने भी वैदिक मूल्यों की पुनर्स्थापना करके, सच्चे मानव धर्म, ज्ञान, जनहित, लोक कल्याण और भारतीय संस्कृति पर बल दिया । साथ ही राम कृष्ण परहंस तथा विवेकानंद ने आत्म ज्ञान, नैतिकता, को धर्म मानते हुए मानवता को आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ा और बीसवीं सदी में महात्मा गांधी ने भी आध्यात्मिक क्षेत्र में सत्य, अहिंसा, मानव धर्म, सर्व धर्म समन्वय आदि को स्वीकारा किया । अत: ज्ञान, व्यक्ति स्वातंत्र्य, आत्मविकास, पवित्रता , व्रत, लोकहित , नैतिकता तथा आचरण संबंधी मूल्यों को स्वीकार किया गया । इसके साथ उन्होंने लौकिक पक्ष को परलौकिक जीवन से जोड़ा और विवेकानंद ने मानव सेवा को सच्ची ईश्वर साधना में देखा । "उन्होंने आध्यात्मिक चेतना को लोकान्मुख किया और वेदान्त को मायावाद से मुक्त कर कर्म के असंख्या मार्ग प्रशस्त किये ।"[19] तत्पश्चात् सामाजिक चेतना प्रबल होती गयी और आध्यात्मिक मूल्यों पर भौतिक मूल्यों का प्रभाव पड़ने लगा ।

"परलोक के स्थान पर लौकिक सृष्टि की सृष्टि हुई । अन्त:करण के स्थान पर बाह्य जीवन की प्रगति महत्त्व पूर्ण हो गयी ।"[20] बीसवीं शताब्दी में भारतीय समाज में वैज्ञानिक भौतिकवाद का प्रभाव पड़ने लगा । विज्ञान ने व्यक्ति मन को प्रभावित करके , बौद्धिकता को जन्म दिया । फलस्वरूप ईश्वर विषयक अवधारणा को तर्कवादी बुद्धि से कसा जाने लगा और धर्माडम्बरों को दूर करके, सत्य, दया , मानवता, अहिंसा व नैतिक मूल्यों को आध्यात्मिक मूल्यों से जोड़ा गया । वैज्ञानिक प्रभाव ने अंध भक्ति व विश्वास तथा भावुकता की समाप्ति करके आध्यात्मिक मूल्यों को बौद्धिकता की कसौटी से देखा गया । परिणामत: साठोत्तर पूर्व युग में परम्परागत तप, दान, पुंय, व्रत, पाठ-पूजा, अनुष्ठान, तीर्थ स्थान, ईश्वर दर्शन आदि की अवधारणा में अन्तर आने लगा, किन्तु यह कहा जा सकता है कि सन् 1960 के पश्चात् आध्यात्मिक तथा सामाजिक जीवन-मूल्यों में जो परिवर्तन, आया, उतना तीव्र परिवर्तन पूर्ववर्ती युगों में नहीं आया ।

समाजगत - मूल्य :-

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह विवेचन किया जा चुका है कि पूर्ववर्ती समाज सुधारकों ने समाज के जितने भी आदर्शवादी सुधार किये, वे सब सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों से संबंधित थे । यह कहा जा सकता है कि राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द आदि ने मानवता, समाज-कल्याण, दायित्व की भावना, समानता, न्याय, समाज में नारी का महत्त्व, समाज सेवा, त्याग तथा सदभाव आदि मूल्यों को समाज में बल दिया जाता रहा । जैसाकि पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह कहा जा चुका है कि सतीप्रथा, बाल-विवाह, धार्मिक अंध विश्वास, मूर्तिपूजा, विधवा तिरस्कार आदि का विरोध किया तथा विधवा विवाह , नारी शिक्षा आदि का समर्थन किया ।

भारतीय समाज में ~~पूर्वपर्क~~ पूर्ववर्ती जीवन-मूल्यों का विशेष महत्त्व रहा । कहा जा सकता है कि पूर्व युगीन जीवन में शारीरिक पवित्रता, जाति-भेद,

वर्ग-भेद , दाम्पत्य जीवन के संबंध , शिष्टाचार , लोकाचार, पितृत्व , मातृत्व, आदर आज्ञापनन, संगठन, त्याग, समाज सेवा, परहित आदि मूल्यों के महत्त्व का प्रतिपादन किया, किन्तु इसके साथ व्यक्ति में आचरणों एवं व्यवहारों को सुधारने एवं समाज को व्यवस्थित रखने के लिए, न्याय, त्याग तथा नैतिकता का महत्त्व रहा । वस्तुतः साठोत्तर पूर्व समाजिक मूल्यों में विशेष परिवर्तन नहीं हो पाया था, परन्तु गांधी प्रभाव व अन्य समाज सुधारकों के कारण जाति भेदभाव की स्थिति में परिवर्तन आया । स्वतंत्रता के पश्चात् समाज को ऊँचा उठाने के लिए गली-सड़ी परम्पराओं तथा रूढ़ियों को दूर करने व समाज को सचेतन बनाने के कार्यों पर ध्यान दिया जा रहा है जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है । विधवा-विवाह, तलाक, नारी समानता आदि को कानून मान्यता प्राप्त हुई तथा बाल विवाह, छूआछूत आदि का विरोध हुआ, किन्तु ये कानून तक ही सीमित रह गये । व्यवहार में इनको बहुत कम लाया गया । इसका कारण व्यक्तिगत साहस की कमी तथा सशक्त समाज की व्यवस्था थी । प्रायः यह देखा जाता है कि गांव का व्यक्ति नल का पानी पीने तथा होटलों आदि में खाने-पीने से अरूचि रखता है । शहरों में छूआछूत तथा उच्च जाति , निम्न जाति का भेदभाव बना रहा । हम कह सकते हैं कि युगीन परिवेश में जितना परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है, उतना पूर्ववर्ती समाज में परिवर्तन नहीं हुआ था । युगीन जीवन में समाजवादी व साम्यवादी विचारधारा ने भी सामाजिक जीवन मूल्यों को विशेष प्रभावित किया । समाजवादी चेतना के विकास ने सामाजिक दायित्व, सहकारिता, नारी स्वातंत्र्य, मानव-समानता, जाति-पाति की भावना का त्याग, शोषित वर्ग का उत्थान आदि नये दृष्टिकोणों को विकसित किया । इसके अतिरिक्त शिक्षा तथा विज्ञान का प्रभाव जन-जीवन पर व्यापक रूप से छा गया, इससे सामाजिक मूल्य प्रभावित हुए । अतःसामाजिक जीवन-मूल्यों में परिवर्तन आर्थिक तथा राजनैतिक परिवेश के कारण भी आया । देश में राजनीतिक वातावरण में ऐसी स्थिति उपस्थिति कर दी कि व्यक्ति को समाज के प्रति नये दृष्टिकोण बनने लगे ।

राजनीतिक मूल्य :-

अँग्रेज़ी शासन के विरूद्ध सन् 1857 में हुये स्वातंत्र्य संग्राम राजनीतिक चेतना थी । इस राजनीतिक चेतना ने देशवासियों के मन और मस्तिष्क में स्वदेश-प्रेम, मातृभूमि प्रेम , और राष्ट्रीय चेतना भर दी। इन चेतना ने स्वाभिमान, स्वराष्ट्रभिमान, स्वधर्माभिमान आदि के मूल्यों का वपन किया । अँग्रेज़ी शासन का कड़ा विरोध करने वाले राजा राममोहन राम, गोपाल गोखले, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, गांधी, दादा नौरोजी, जय प्रकाश नारायण आदि थे । देश के विभिन्न राजनीतिक नेताओं ि तथा समाज सुधारकों ने जनता में राष्ट्र प्रेम की भावना जगाने का प्रयास किया । "राजा राम मोहन राय के सारे काम अपनी मातृभूमि के गहरे प्रेम और गरीब तथा अनजाने लोगों की तीव्र सहानुभूति से प्रेरित होते थे, चूँकि अँग्रेज़ों के खिलाफ सशक्त विरोध नहीं किया जा सकता है । इसलिए लोकमत को शिक्षित करते रहे और इस तरह उन्होंने अपने देशवासियों में राजनीतिक चेतना जगाई ।"21 अँग्रेज़ी शासन का विरोध हिन्दू मुस्लिम दोनों ने एक होकर किया । देश-प्रेम , एकता, सहयोग, स्वतंत्रता, आदि मूल्यों पर बल दिया गया । कहा जा सकता है कि ब्रिटिश की निरंकुशता तथा देश से बाहर निकालने के लिए देशभक्ति की लहर दौड़ने लगी । स्वतंत्रता संघर्ष के दो रूप - क्रान्तिकारियो द्वारा सशक्त क्रान्ति का और दूसरा गांधी जी के अहिंसात्मक सत्याग्रह का । एक ओर क्रान्तिकारियों का नारा थ -"गौरन को मार-मार बोरन में भरिहो" तो दूसरी ओर गांधी मार्ग - अहिंसात्मक सत्याग्रह के प्रति लोगों की आस्था बढ़ती गयी । इसके साथ यह कहा जा सकता है कि राजनीतिक चेतना का फैलाने का श्रेय कांग्रेस को ही नहीं अपितु अन्य प्रेरक शक्तियों का भी प्रभाव है । कांग्रेस के दो दल हो गये - नम दल और गर्म दल - । गांधी जी जहाँ अहिंसात्मक रूप से स्वराज्य प्राप्त करना चाहते थे , वहाँ तिलक मानते थे कि "हमारे पास हथियार नहीं हैं, और हमें हथियारों की जरूरत भी नहीं है । हमारा बायकाट ही जबर्दस्त राजनैतिक हथियार है ।"22

इसप्रकार क्रान्तिवादी तथा अहिंसावादी दो प्रवृत्तियों को लेकर जन मानस में राष्ट्रीय चेतना का बीजवपन किया । गांधी जी के नेतृत्व में जनता ने स्वदेशी वस्तुओं से प्रेम, विदेशी वस्तुओं तथा स्कूलों कालेजों का बहिष्कार किया । राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसावादी, हिंसावादी , या आतंकवादी अनेक नवीन प्रवृत्तियों का जन्म होने लगा । तिलक का "स्वाराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है , तथा गांधी जी का असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह, अहिंसा , अनशन , स्वतंत्रता आदि राजनैतिक मूल्यों का विकास हुआ । कहा जा सकता है कि गांधीवाद का लक्ष्य था - शोषक रहित समाज की स्थापना करना , वे समाज में मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण का अन्त करना, राष्ट्रीय सम्पत्ति का समान रूप से न्यायपूर्ण वितरण करना, धनी-गरीब के बीच बढ़ती हुई खाई को समाप्त करना तथा समाज से ऊंच-नीच साम्प्रदायिक भेदभाव, मालिक-मजदूर आदि की विषमताओं को दूरकरना था । स्वातंत्र्य पूर्व राजनीति आदर्शपूर्ण तथा लक्ष्य युक्त व नैतिक मूल्यों से सम्बन्धित थी । समस्त भारतीय जन जीवन का एक ही लक्ष्य था - स्वतंत्रता प्राप्ति । किन्तु स्वातंत्र्योत्तर युग में राजनीतिक मूल्यों में अनेक विकृतियाँ उत्पन्न होती गयी ।

सन् 1947 ई० के पश्चात् भारत को अपने भविष्य का निर्माण करने का अवसर मिला । महात्मा गांधी, सरदार पटेल, पं० जवाहर लाल नेहरू, आदि जैसे महान् नेताओं के नेतृत्व में नवोदित राष्ट्र की बागडोर संभाली गयी । नये दायित्व , राष्ट्रीय एकता, नये राष्ट्र की उन्नति एवं निर्माण करने हेतु, नये कदम बढ़ने लगे । देश में व्यक्ति स्वातंत्र्य तथा स्व विकास के लिए पर्याप्त अवसर मिलने लगा । पूर्ववर्ती युग में सामन्तवाद, साम्राज्यवाद के आर्थिक तथा सामाजिक शोषण से जनता को मुक्ति मिली । और भारतीय संविधान ने जन-कल्याण, न्याय, समानता का अधिकार, बराबरी का अवसर, वर्ग-भेद, वर्ण-भेद की भावना का त्याग, स्वतंत्रता और भाई चारे की घोषणा की ।

आज़ादी के बाद भारतीय जनता के आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया गया, जिनका लक्ष्य था - देश की आर्थिक दशा सुधारना, रोज़गार के अवसर प्रदान करना, वस्तुओं का उत्पादन बढ़ना, और देश का सर्वांगीण विकास करके , सभी वर्गों को लाभान्वित करना । इसके साथ ही देश में बड़े बड़े उद्योग खोले गये । इनका व्यापक स्तर पर विकास भी हुआ किन्तु आर्थिक में आशानुकूल सुधार नहीं हुआ । इनसे सामान्य व्यक्ति की समस्यायें ज्यों की त्यों बनी रहीं । तथा गरीब जनता की आशाएं टूटने लगीं । इसके अतिरिक्त चीन व पाकिस्तान के आक्रमण से देश की आर्थिक विषमता और भी अधिक बढ़ी । किन्तु इस आक्रमण से लोगों में राजनीतिक चेतना आई, वे राजनीति को केवल आदर्शपूर्ण ही नहीं अपितु यथार्थ से भी समन्वित करने लगे । नेहरू जी की नीति के प्रति लोगों की आस्था डिगने लगी । राजनीति में भी , समाज के स्थान पर व्यक्ति को प्रधानता मिलने लगी । धीरे-धीरे राजनीति क्षेत्र में अर्थ व्यवस्था को प्रधानता मिलने लगी । इसी कारण आज राजनीति में स्वार्थ, रिश्वतखोरी, जमाखोरी आदि की प्रवृत्ति पनप रही है । आर्थिक विषमता के कारण दिनों-दिन मंहगाई बढ़ रही है । नित्यप्रति, हड़ताल, घेराव, तालाबंदी आदि होते रहते हैं । भ्रष्ट राजनीति दल व पूंजीपति इस स्थिति से अनुचित लाभ उठाते हैं । अत:जनता में राजनीति के प्रति घृणा उत्पन्न होती जा रही है । इससे नैतिकता, समानता, भाई चारे आदि के मूल्य टूटने लगे हैं । नेताओं की स्वाथ भावना ने राजनैतिक व आर्थिक मूल्यों को संकट में डाल दिया । अत: कहा जा सकता है कि युगीन वातावरण में अनेक नवीन प्रवृत्तियों और स्थितियों के कारण राजनीतिक मूल्यों में हृास होने लगा ।

जीवन- मूल्यों को प्रभावित करने वाली प्रवृत्तियां :-

पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से प्रकट है कि व्यक्ति मन में आदर्श व परम्परा का मोह रहा । वह व्यक्तिगत, समाजगत, धार्मिक, आध्यात्मिक

और नैतिक मूल्यों को भौतिक एवं बौद्धिक धरातल पर नहीं परखता था, किन्तु जैसे जैसे शिक्षा का प्रचार व प्रसार, वैज्ञानिक तकनीकी प्रगति एवं राजनैतिक गतिविधियां बढ़ती गई, वैसे-वैसे जीवन-मूल्यों को प्रभावित करने वाली नवीन प्रवृत्तियां पनपने लगीं ।

यह कहा जा सकता है कि सन् 1960 ई0 के पहले जीवन-मूल्यों को प्रभावित करने वाली आर्थिक , राजनैतिक, समाजिक ,वैयक्तिक, वैज्ञानिक और विदेशी प्रभाव से उत्पन्न आदि अनेक प्रवृत्तियों का जन्म समाज में अवश्य हो चुका था, किन्तु कुछ एक प्रवृत्तियों को छोड़कर पूर्व युगीन काल के समाज में इतना प्रभाव नहीं पड़ा था, जितना आज उनका इस युग में पड़ रहा है । अतः युगीन संदर्भ में पूर्ववर्ती काल की प्रवृत्तियां व्यापक रूप में पनप रही है जिनसे जीवन-मूल्यों की नयी अभिवृत्तियां, नये संकल्प और नये दृष्टिकोणों का जन्म हुआ । यह कहना समीचीन होगा कि पूर्व युगीन प्रवृत्तियां इस युग में आकर और बलवती हो गयी उनका अनुशीलन नीचे किया जायेगा ।

सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि नारी स्वातंत्रता और व्यक्ति स्वतंत्रता की प्रवृत्ति का विकास पहले हो चुका था, परन्तु इसका व्यापक प्रभाव साठोत्तर काल में परिलक्षित हुआ । इस प्रवृत्ति के विकास ने भोगवादी सुखवादी, आत्मरति आदि को महत्त्व दिया । भौतिकवादी प्रवृत्ति के बलवती होने से धार्मिक, आध्यात्मिक मूल्यों का ह्रास हुआ । आधुनिक युग में जीवन-मूल्यों के विकास एवं परिवर्तन में विज्ञान का विशेष हाथ रहा है । "वैज्ञानिक विचार धारा के विकास ने लेखक को नई दृष्टि दी, बौद्धिकता का आग्रह बढ़ उठा । समाज के कुरूप यथार्थ का उदघाटन कर, व्यक्ति के दुख,दर्द ,व्यथा-वेदना और आकुलता के कारणों का अन्वेषण किया गया । सामाजिक बन्धनों, वर्जनाओं के प्रति विद्रोह हो उठा ।"[23] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो ही चुका है कि साठोत्तर काल तक आते आते जीवन-

मूल्यों में विस्फोटक स्थिति पैदा हो गई थी, इसलिए यहाँ यह विचारणीय है कि व्यक्ति चेतना, शिक्षा तथा वैज्ञानिक दृष्टि ने जीवन-मूल्यों को प्रभावित करने वाली अनेक प्रवृत्तियों की सृष्टि की, उन पर यहाँ विचार किया जायेगा ।

सन् 1960 के बाद व्यक्ति चेतना "व्यक्तिवाद" के सीमित घेरों में सिमट कर रह गई है । क्योंकि आज व्यक्ति स्वहित को प्राथमिकता देने लगा है । उसमें परहित की भावना क्षीण होती जा रही है । वह "अर्थ" को जीवन का चरम मूल्य मानने लगा है । वह अर्थ संचय में भ्रष्टाचार, अनैतिकता, रिश्वत खारी आदि दुष्प्रवृत्तियों को निसंकोच स्वीकार कर रहा है । इन समस्त दुष्प्रवृत्तियों ने ईमानदारी, सत्य तथा अच्छाई आदि मूल्यों का ह्रास हो रहा है । यही कारण है कि युवा वर्ग में काम और अर्थ को लेकर असंतोष फैल रहा है । और उनके मन में मानसिक तनाव व कुण्ठा, बेचैनी, आकुलता आदि का प्रसार हो रहा है । व्यक्तिगत मुल्य व्यक्तिवादी सीमित मनोवृति में सिमट गये हैं । कहा जा सकता है कि युग विशेष के साथ साथ व्यक्ति भी बदल रहा है । परिवार, समाज व उनके "मूल्य" बदल रहे हैं । और उनके स्थान पर केवल दुर्बल प्रवृत्तियां जन्म ले रही हैं । परिणामत: इनका प्रभाव हमारी नैतिकता, आध्यात्मिकता, वैयक्तिकता, सभ्यता व संस्कृति पर पड़ रहा है ।

साठोत्तर भारत में नयी शिक्षा का प्रसार व्यापक रूप से होने लगा । गाँव गाँव में स्कूल, तथा शहरों में महाविद्यालयों की स्थापना हुई । इस व्यापक स्तरीय प्रसार के कारण गाँव व शहरों में नई चेतना परिलक्षित होने लगी । शिक्षा के कारण स्त्री-पुरूष में समानता व अधिकार बोध की भावना जागृत होने लगी और नारी दशा सुधारने में इसका बहुत सहयोग रहा । शिक्षा प्राप्त नारी आत्मनिर्भर बन अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व व विचार रखने लगी । वह न केवल अपने परिवार तक सीमित रही अपितु समाज व राष्ट्रीय कार्यों में भी आगे बढ़कर पुरूष के साथ प्रतिस्पर्धा करने लगी । उसमें - प्रेम, विवाह, स्वअस्तित्व की नवीन चेतना दृष्टिगोचर

होने लगी है । इससे दाम्पत्य जीवन तथा प्राचीन परम्परागत बंधन प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके । पति-पत्नी के बीच के मधुर संबंध फीके पड़ने लगे । तथा तनाव व मनमुटाव की स्थिति उपस्थित होने लगी । इसके अतिरिक्त शिक्षा के कारण अंधविश्वासों तथा अज्ञानजनित परम्पराओं को भी अस्वीकारा जाने लगा । तथा परम्परागत जातिगत कर्म भी शिक्षा के कारण छूटने लगे । इसप्रकार शिक्षा के कारण नवीन चेतना तथा स्वाभिमान आदि दृष्टिकोण प्रमुख रूप से उभरने लगे ।

यह उल्लेखनीय है कि विज्ञान के विकास तथा शिक्षा के प्रसार के साथा-साथ व्यक्ति में बौद्धिकता का विकास हुआ । वैज्ञानिक औद्योगिक तकनीकी विकास ने युवावर्ग में क्रान्तिकारी परिवर्तन किये । वह प्रत्येक वस्तुओं को बौद्धिक दृष्टि से परख रहा है । इससे प्राचीन काल से चले आ रहे धार्मिक, सांस्कृतिक ,आध्यात्मिक एवं समाजिक मूल्यों में परिवर्तन हुआ । यही कारण है कि शिक्षा के प्रभाव के भांति इसके कारण भी मान्यताओं, अंधविश्वासों तथा रूढ़ियों के प्रति नये दृष्टिकोण बने । इसलिए आज का युवावर्ग ~~करकेल~~ शील, संयम, सदाचार आदि नैतिक मूल्यों को नकार रहा है । कहा जा सकता है कि ऐसी स्थिति में वह भोगवादी, सुखवादी और भौतिकवादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा दे रहा है । इन प्रवृत्तियों ने परम्परागत जीवन-मूल्यों को प्रभावित यिा । यदि सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो औद्योगीकरण ने भी हमारे मूल्यों को विघटित किया है । कल-कारखानों के खुलने के कारण जहाँ एक ओर जाति भेदभाव मिट रहा है , वहां दूसरी ओर वर्ग विषमता अर्थगत आधार पर बढ़ रही है । मजदूर और श्रमिकों में एकता, सहयोग तथा परस्पर सद् - भावना भी पनप रही है । कहा जा सकता है कि सद्भाव, एकता ि तथा सहयोग के मूल्य नये रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हुए हैं । इसके साथ ही शहरों में बढ़ती हुई जनसंख्या , बेकारी, मंहगाई तथा आवास समस्या के कारण मानव मूल्य विघटित हो रहे हैं । आवास समस्या नगरों में इतनी तीव्र हो जाने से परिवार के वृद्धजन ,युवक एवं बच्चे एक कमरे में सिमट गये । परिणाम प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के मूल्य सहज रूप से टूट रहे हैं ।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति चेतना के कारण व्यक्ति में "स्व" व "अंह" की प्रवृत्ति का विकास हुआ और इससे उसमें अस्तित्व तथा प्रतिष्ठा की भावना प्रबल हो उठी । उसने अपने जीवन का प्रमुख आधार "अर्थ का संचय" तथा "स्वातंत्र्य भावना" को बनाया ।जिससे वह अनुशासनहीन, भ्रष्ट , तथा रिश्वतखोर बन गया । व्यक्ति चेतना के कारण सांस्कृति, व्यक्तिगत, सामाजिक तथा धार्मिक मूल्यों में विघटन हुआ कहा जा सकता है कि शिक्षा ने जहां एक व्यक्ति चेतना तथा विज्ञान का विकास किया, वहां उसकी और बौद्धिकता को प्रश्रय मिला । इससे सामाजिक चेतना, प्रजातांत्रिक भावनाएँ और व्यक्ति स्वातंत्र्य भावना और बलवती हो गयी । औद्योगिक विकास के साथ साथ जाति भेद के मूल्य टूटने लगे तो वर्ग विषमता, आर्थिक आधार पर बढ़ने लगी । ऐसी स्थिति में हमारे पारिवारि जीवन-मूल्य टूट रहे हैं ।

निष्कर्ष :-

जीवन-मूल्यों से संबंधित पूर्व विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि व्यक्तिगत, आध्यात्मिक , समाजिक एवं राजनैतिक मूल्यों की स्थिति परम्परागत बनी हुई थी, किन्तु कुछ परिवर्तनों के साथ । व्यक्ति समाज हित के साथ साथ अपने उत्थान में भी रूचि रखने लगा । प्रेम,सद्भाव, आदर्श,ईमानदारी, सहयोग, तथा नैतिक मूल्यों का समाज में प्रभाव था ।

औध्यात्मिक व सामाजिक मूल्यों पर भौतिकवादी प्रवृत्ति एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का प्रभाव पड़ने लगा । और जनता नवीन के प्रति आकर्षित होती हुई , मशीन के साथ चलने लगी । जन-जीवन में भौतिक मूल्यों को ग्रहण किया जाने लगा ।जिससे जीवनादर्श व प्रतिमानों में अन्तर आने लगा, किन्तु जीवन-मूल्यों में परिवर्तन सन् 1960 के पश्चात् ही परिलक्षित हुआ ,क्योंकि पचास और साठ के बीच जीवन में आधुनिकता के बोध के साथ साथ गहराई तो थी परन्तु उनमें इतनी जटिलताओं , विद्रूपताओं और विसंगतियों का अंकन नहीं

था, जितना साठोत्तरी युग के जीवन में है ।

द्वितीयत: यह कहा जा सकता है कि इस युग के जीवन-मूल्यों में तीन रूप दिखाई पड़ते हैं ।

§1§ भारतीय परम्परा से प्रभावित जीवन-मूल्य

§2§ पाश्चात्य प्रभावों से अनुप्राणित जीवन-मूल्य

§3§ मूल्यों में प्राचीन और नवीन का द्वन्द्व या प्राचीन मूल्यों का ही नवीन मूल्यों का आभासित होना ।

-::-

"मूल्यों के विकास के कारण तथा उनके विविध पक्ष"

उपर्युक्त जीवन-मूल्यों को प्रभावित करने वाली प्रवृत्तियाँ ही नये दृष्टिकोण व संकल्प बनाती हैं । ये दोनों मूल्यों के विकास में सहायक होते हैं । जैसाकि हम प्रथम अध्याय में कह चुके हैं , वैसे आज के भौतिक युग में नये मूल्यों के विकास के कारण क्या हैं ? साहित्य के समक्ष यह जटिल प्रश्न है । "मूल्य चाहे कितने प्रकार के क्यों न हों", वे युग संदर्भ में ही अंकुरित और पल्लवित होते रहते हैं । यह कहना समीचीन होगा कि युगीन जीवन की विभिन्न परिस्थितियों से व्यक्तिगत समाजगत ,राजनीति, आध्यात्मिक ,भौतिक , आर्थिक व नैतिम मूल्य समयानुकूल परिवर्तित होते रहते हैं । "उत्पादन और वितरण के साधनों के बढ़ने से सामाजिक संगठन बदलता है और सामाजिक संगठन के बदलने से मूल्यों में परिवर्तन उपस्थित होता है ।"[24] नये मूल्यों के विकास में युग विशेष अनेक सामाजिक तथा नैतिक प्रवृत्तियां होती हैं, जो जीवन-मूल्यों को प्रभावित करती रहती हैं । अतः आज नये भाव बोध में "अर्थ" को लेकर अनेक प्रवृत्ति पनप रही हैं । भौतिकवादी दृष्टि,प्रजातंत्र, शहरीकरण, लिंग में समानता, परिवार नियोजन, तलाक आदि को समाज में स्वीकारा जाने लगा है । ऐसी स्थिति में पुराने नैतिक मूल्य विघटित हो रहे हैं । यह कारण है कि सन् 1960 के पश्चात् उपर्युक्त प्रवृत्तियों के विकास ने परम्परागत जीवन मूल्य तथा नैतिकता को विशेष प्रभावित किया । इस युग के मूल्यों के विकास की प्रधान प्रवृत्तियां इसप्रकार हैं , नैतिकता की टूटती हुई मान्यातायें, सामाजिक प्रवृत्तियां, वैयक्तिक चेतना, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रवृत्तियां हैं । जिन्हें क्रमशः प्रस्तुत किया जा रहा है :

§1§ नैतिकता की टूटती हुई मान्यताएं :- पूर्ववर्ती पृष्ठों के आधार पर कहा जा सकता है कि साठोत्तर युग मूल्य विघटन का है । मूल्यों की टकराहट और मूल्य टूटन के कारण समाज में नैतिक मान्यताएं टूट रही हैं । यहां उन प्रवृत्तियों का चित्रण किया जा रहा है ,जिन्होंने नैतिक मूल्यों को प्रभावित

किया है , वे इसप्रकार हैं :- व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छंद यौन वृत्ति, परम्परा के प्रति विद्रोह की चेतना , जाति व्यवस्था के प्रति नया दृष्टिकोण तथा वर्ग चेतना हैं । इनपर विचार नैतिक मूल्यों के दृष्टिकोण से किया जा रहा है :-

(क) व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छंद यौन वृत्ति:-

इस युग में व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छंद यौन वृत्ति को इतना महत्त्व दिया जा रहा है कि आधुनिकता की इस होड में आज का व्यक्ति सामाजिक नैतिक बंधनों को बिना किसी हिचक के तोड़ रहा है ।[25] सन् 1960 ई0 के बाद के जीवन में "अर्थ" और "काम" के कारण नैतिक मूल्यों में परिवर्तन आया । जीवन की नवीन परिस्थितियों के साथ सामंजस्य न स्थापित कर पाने के कारण दाम्पत्य जीवन में नैतिक मान्यताओं की टूटन के साथ-साथ उनके स्वच्छंद यौन संबंधों ने नयी भूमिका अदा की । स्त्री-पुरूष आज सेक्स को शारीरिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार कर रहे हैं । इसका कारण फ्रायड, एडलर तथा युंग द्वारा मनुष्य के जीवन में यौनवृति को आवश्यक मानना है ।[26] इसीलिए समाज, व्यक्ति स्वच्छंद यौन वृति को स्वीकार करने लगा । फायडवादी सिद्धांत तो यहाँ तक कहना है कि कोई भी स्त्री किसी भी पुरूष के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने में स्वतंत्र है । केवल पति-पत्नी के मध्य शारीरिक संबंध स्थापित होना ही आवश्यक नहीं । अतः फ्रायड सीमित मनोवृत्ति को विस्तृत रूप देता है ।"[27] पाश्चात्य के स्वच्छंद भौतिक वातावरण को लक्ष्य करके, आज की कथित आधुनिकाएं "मॉड" कहलाने के लिए कुछ धनार्जन के लिए, कुछ दैहिक आनन्द प्राप्ति के लिए स्वच्छंद यौनवृत्ति को महत्त्व देती हैं ।

प्राय: यह लक्ष्य करने में आता है कि वैज्ञानिक प्रगति एवं नारी शिक्षा के कारण भी परम्परागत सेक्स के प्रति नये दृष्टिकोण उभरे । नारी स्वातंत्र्यता प्राचीन शारीरिक पवित्रता के मूल्य को नगण्य मानकर ,यौनवृत्ति को सामान्य दृष्टि से देखती हैं । वह आज दैहिक सुख भोग को जीवन का मूल्य मान बैठी हैं । और आचरण संबंधी मूल्यों की अपेक्षाकृत फैशनवादी प्रवृत्ति के साथ सौंदर्य

के प्रति आकृष्ट होकर इसे अपनाने में लेशमात्र भी संकोच प्रकट नहीं कर रही हैं । वैज्ञानिक विकास के कारण नारी को "गर्भ-निरोधक" तथा "गर्भ-पात" आदि के साधनोपलब्ध होने पर वह अधिक स्वतंत्रता का अनुभव कर रही है । औद्योगीकरण के कारण उत्पन्न शहरों में आवास समस्या के कारण यौन समस्या उभर रही है । देर के शादी होना, अश्लील साहित्य पढ़ना, फिल्म आदि के अश्लील पोस्टर देखना , क्लब तथा सह-शिक्षा के कारण भ ी आज सेक्स प्रवृत्ति तीव्रगति से समाज में बढ़ रही है । जहाँ, साठोत्तर पूर्व युग में इसे संयम से युक्त रूप से देखा जाता था ,वहाँ यह धारणा युगीन परिवेश में परिवर्तित हो रही है । इसके प्रति नये दृष्टिकोण बन रहे हैं । पाप-पुण्य तथा नैतिकता के दायरे टूट रहे हैं । अत: स्वच्छंद यौन-वृत्ति ने संयुक्त परिवार, कुल प्रतिष्ठा, स्वाभिमान, पवित्रता, नैतिकता आदि मूल्यों को पतनोन्मुख किया है ।

(ख) परम्परा के प्रति विद्रोह की चेतना :-

"परम्परा" समाज से उद्भूत होकरसमाज की व्यवस्था को अनुप्राणित करती है । और उसके मूल्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करती रहती है । आज समाज में मुख्यत: नैतिक, धार्मिक एवं समाजिक मूल्य ही परम्परागत जीवन-मूल्यों के रूप में प्राप्त होते हैं । चूँकि परम्परा युग विशेष की परिस्थितियों से जुड़ी रहती हैं । यह उल्लेखनीय है कि परिस्थितियाँ युगीन परिवेश में परिवर्तित होती रहती हैं । यह अवश्य कह सकते हैं कि विवाह का जन्म-जन्मान्तर का संबंध, बहु-विवाह प्रथा, अनमेल विवाह, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा आदि भारतीय सामाजिक संरचना में मध्यकालीन से चली आ रही परम्परायें अपना अस्तित्व समेट रही हैं । इसीलिए यह आवश्यक नहीं है कि परम्परायें प्रत्येक युग की परिस्थितियों की कसौटी पर खरी उतरें । यही कारण है कि वर्तमान युग में निरर्थक परम्पराओं के प्रति विद्रोह की भावना परिलक्षित है । जैसे छुआछूत की भावना बाल-विवाह,सती-प्रथा, एवं वैविध्य के कलंक , के प्रति विद्रोह की चेतना उत्पनन हो रही है ।

इसीलिए कहना समीचीन होगा कि शिक्षा तथा वैज्ञानिक विकास के साथ-साथ जो परम्परागत प्राप्त मान्यताएं व रीति-रिवाजों यथा -शारीरिक पवित्रता, स्वर्ग-नरक, तथा पाप-पुण्य विषयक धारणा , काशी आदि पवित्र व धार्मिक स्थानों के प्रति मोह, आदि धारणायें थीं, वे आज के परिवेश में आकर टूटने लगी । शिक्षा तथा वैज्ञानिक विकास के कारण युवा वर्ग इन परम्पराओं के प्रति आस्था हीन होता जा रहा है । इन समस्त धार्मिक व सामाजिक परम्पराओं के प्रति आज विज्ञान तथा शिक्षा के कारण स्त्री-पुरूष नये चिन्तन से जुड़ते जा रहे हैं । क्योंकि ये परम्पराएं कोई ठोस आधार नहीं रखती हैं इसीलिए उन्हें आज दकियानूस माना जा रहा है । वस्तुत: उपर्युक्त अवधारणाएं व रीति रिवाज परम्परायें, जाति-भेद, सजातीय विवाह, नाम करण , मुंडन, अंत्येष्टि संस्कार आदि कुछ परम्पराएं आज भी अवशिष्ट हैं और कुछ छूटती जा रही हैं ।

निष्कर्ष :-

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि नये परिवेश में परम्पराओं के प्रति विद्रोह की चेतना तो परिलक्षित होती है किन्तु कुछ परम्पराएं अपने मूल में बनी हुई है । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वे नवीनता ग्रहण कर रही हैं । विवाह, जनेऊ संस्कार, श्राद्ध कर्म, अनुष्ठान, दाम्पत्य जीवन, माता-पिता के प्रति आदर, गुरू महत्व, पुत्र-कामना, भाईचारे, प्रेम, सद्भाव आदि मूल्य परम्परागत प्राप्त हैं । नारी शिक्षा, वैज्ञानिक विकास तथा कल-कारखानों के कार्य कलापों द्वारा युगीन परिवेश में जन सामान्य के आचार-विचार, व्यवहार, आदर्श , जीवन पद्धति व संकल्पों के प्रति नये दृष्टिकोण बने हैं । यही भी कहा जा सकता है कि जहाँ एक ओर समाज में व्याप्त परम्पराएं विद्रोह के फलस्वरूप नवीन कलेवर धारण कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर परम्परागत मूल्य अपने अस्तित्व बनाये हुए हैं । कारण यह है कि नवीन वस्तु सर्वथा पुराने रूप को त्यागकर अस्तित्व बनाये नहीं रह सकती है । अत: नैतिक, धार्मिक और सामाजिक व जाति-व्यवस्था के प्रति समाज में नये दृष्टि-कोण विभिन्न कारणों से उपस्थित हुये ।

(ग) जाति व्यवस्था के प्रति नये दृष्टिकोण :-

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि युगीन परिस्थितियों के साथ साथ परम्परायें भी अपना मौलिक रूप त्याग रही हैं । फिर भी भारतीय जन-जीवन में जातिगत कठोर नैतिक बंधन आज भी हमारे संस्कारों में समाये हुए हैं । प्राचीन वर्ण-व्यवस्था मध्यकाल तक आते आते जाति भेद में बदल चुकी थी । किन्तु नये युग का व्यक्ति जातीयता को नये विचार व नये चिन्तन से जोड़ने लगा । यह भावना आज इतनी बलवती होती जा रही है कि निम्न जाति का व्यक्ति चेतन युक्त होकर अपना समानाधिकार समाज में मांग रहा है , और उच्च जाति को नये दृष्टिकोण से देख रहा है । यही कारण है कि इस युग में जातिगत नये दृष्टिकोण बने उसपर लगाये गये नैतिक बंधन, शिक्षा, वैज्ञानिक, व्यक्ति-चेतना ,औद्योगिकरण , नगरीकरण, कल - कारखानों में सभी वर्गों के साथ कार्य व्यवहार करने के कारण टूट रहे हैं । जिसका प्रभाव शहरों से गांवों में पहुंच रहा है । आधुनिक युग में सेक्स की प्रवृत्ति के कारण अन्तर्जातिय विवाह को प्रोत्साहन मिलने लगा जिसके फलस्वरूप जाति-पाँति की सुदृढ़ व्यवस्था चरमराने लगी । निम्न जाति के साथ नये संबंध तथा उनके प्रति सद्भाव और नये मेलजोल की प्रवृत्ति उद्भूत होने लगी ।

उक्त विवेचन से दृष्टिगत किया जा सकता है कि मध्यकाल से भी वर्ण व्यवस्था जातिभेद में परिवर्तित हो चुकी थी । नई-नई अनेक व्यवहारिक जातियों के विकास के कारण सैंकड़ों जातियां बन गई । नई शिक्षा व कल-कारखानों ने इन जातीय भेद को तोड़ा । इस युग में आकर व्यवहारिक स्तर पर जाति भेद के बंधन ढीले हुए, किन्तु राजनीति की शतरंज में इस मोहर का समुचित उपयोग भी हुआ । अतः समाज में वर्ण व्यवस्था एक नये आयाम के साथ आयी । इसके प्रभाव से सामाजिक प्रवृत्तियां भी अछूती नहीं रह सकीं ।

(2) सामाजिक प्रवृत्तियाँ :-

पूर्ववर्ती विवेचन से प्रकट है कि सन् 1960 के पश्चात् सामाजिक जीवन-मूल्यों में विशेष परिवर्तन आया है । युगीन परिवेश में शिक्षा विज्ञान तथा औद्योगीकरण आदि के विकास के कारण पारिवारिक संबंधों एवं सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति व्यक्ति का दृष्टिकोण बदलने लगा ।इससे हमारे परम्परागत सामाजिक जीवन-मूल्यों में परिवर्तन आना सहज हो गया । यहाँ हम पारिवारिक संबंधों के पतन के विषय में चर्चा करेंगे :-

(क) पारिवारिक संबंधों का पतन और नये आयाम :-

जैसाकि पूर्ववर्ती अध्याय में लक्ष्य कर चुके हैं कि सामाजिक मूल्यों के प्रति व्यक्तिगत दृष्टिकोण बदलने से पारिवारिक जीवन-मूल्यों में परिवर्तन आया । यह सर्वविदित है कि परिवार एक सार्वभौमिक संस्था एवं सामाजिक ईकाई है जिसमें व्यक्ति प्रेम, दया सहानुभूति, सद्भाव, सेवाभाव, सदाचार, त्याग, सहयोग, आदि भावनाओं को प्राप्त करता है । इसीलिए प्रत्येक व्यक्ति का संबंध किसी न किसी रूप में परिवार व समाज से अवश्य रहता है । परिवार अपने कर्तव्यों के माध्यम से सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करता है , जिससे सामाजिक जीवन-मूल्यों की रक्षा होती है । परिवार में जहाँ दाम्पत्य जीवन की भावना में मातृत्व-पितृत्व, सन्तान कामना तथा उनके लिए त्याग जैसी भावना की जागृत होती है, वही इसके द्वारा सामाजिक कर्तव्य, त्याग सेवा तथा उत्थान के कार्यों से संबंधित भावना विद्यमान रहती है । इसी कारण परिवार समाज की एक महत्वपूर्ण ईकाई है ।

किन्तु उपर्युक्त समस्त पारिवारिक मूल्यों तथा संबंध में परिवर्तन, आज की बदलती हुई परिस्थितियों के कारण हो रहा है । यहाँ यह विचारणीय है कि आधुनिकता, नगरीकरण , औद्योगीकरण, बढ़ती हुई आबादी व स्वार्थ वृति , व्यक्ति चेतना, यौन संबंध , आर्थिक, राजनैतिक, नारी शिक्षा आदि

के कारण पारिवारिक संबंधों में पतन आया और इसके परिवर्तनों के कारणों पर इसपर विचार किया जा रहा है :-

§1§ आधुनिकता के बोध के कारण स्त्री-पुरुष के विचार तथा चिन्तन की प्रक्रिया बदल रही है । वैज्ञानिक दृष्टि से पारिवारिक संबंधों को मापा जा रहा है । और इस यथार्थवादी दृष्टिकोण ने मानव-मूल्य, मर्यादा एवं आदर्श को युगीन जीवन में निहित आधुनिक संचेतना से देखा, जीवन के नये परिवेश में उद्भूत नवीन मन:स्थितियों को विकसित किया । जिससे सेक्सवृति कुण्ठा, असन्तोष, आदि प्रवृत्तियां उत्पन्न हुई । इससे पारिवारिक भावात्मक संबंध प्रभावित हुआ ।

§2§ ज्यों ज्यों शिक्षा का प्रसार होता गया त्यों त्यों नगरीय आवास समस्या बढ़ती गयी । नगरीकरण के कारण लोग गांवों से नगर की ओर रोज़-गार की खोज में आने लगे । शहरों में बढ़ती जनसंख्या और शिक्षित व्यक्तियों की संख्या के कारण आवास समस्या उत्पन्न हुई । जिसने परिवारों को छिन्न भिन्न किया । मँहगाई तथा बढ़ती हुई कीमतों ने भी पति-पत्नी के मनो - मस्तिष्क को झकझोर दिया । इस प्रकार नगरीकरण ने पारिवारिक संबंधों को नये आयाम दिये । व्यक्ति की रहन-सहन तथा रीति-नीति संबंधी धारणायें बदलती, और भौतिक सुख साधनों के प्रति आकर्षण बढ़ा ।

§3§ संयुक्त परिवारों के संबंधों के परिवर्तन में सर्वाधिक योगदान औद्योगीकरण व पाश्चात्य शिक्षा का है । इसके कारण जीवन का भौतिक स्तर ऊंचा हो गया । औद्योगीकरण के कारण अनेक व्यवसाय तथा श्रम कार्य होने लगे और संयुक्त परिवार का व्यक्ति नौकरी के लिए बाहर जाने लगा । वह सम्मिलित परिवार को छोड़कर औद्योगिक नगरों में बसने लगा । माता-पिता सुबह से शाम तक कल-कारखानों तथा कार्यालयों में व्यस्त रहते हैं । बच्चों के प्रति आकर्षण तथा मातृ-पितृ भावना कम होती जा रही है । कार्य-व्यस्तता के कारण दाम्पत्य जीवन का मधुर वातावरण विषायुक्त, तनाव तथा कुण्ठा-ग्रस्त हो गया है ।

जैसाकि कहा जा चुका है कि व्यक्ति चेतना एवं बौद्धिकता ने हमारे परम्परागत जीवन-मूल्यों को प्रभावित किया । अतः पारिवारिक जीवन-मूल्य भी इन प्रवृत्तियों से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सके । इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण पति-पत्नी में अस्तित्व तथा समानाधिकार की भावना जागृत हुई । आज विवाह को धार्मिक कृत्य न मानकर सामाजिक समझौता माना जा रहा है । इसीलिए पति-पत्नी के बीच विवाद की स्थिति सम्बन्ध विच्छेद का कारण बन जाती है । जिससे परिवार में विघटन हो जाता है । प्रेम (रोमांस) तथा अन्तर्जातीय विवाह तथा भावावेश में विवाह आदि करने के कारण भी पारिवारिक मूल्य संकट में पड़ गये हैं । युवक-युवती यौनाकर्षण , अन्तर्जातीय विवाह के लिए उत्तदायी कहा जा सकता है और यथार्थ के धरातल पर विच्छेद की ओर ले जाता है । इसके अतिरिक्त यौन-संबंधों की असन्तुष्टि के कारण भी पारिवारिक संबंधों का पतन हुआ ।

अतः हम कह सकते हैं कि आर्थिक, फैशन-परस्ती, भौतिक आकर्षण , स्वतंत्र प्रवृति, शिक्षा, अहम् भावना, राजनीति तथा स्थायी प्रेमाभाव आदि कारणों से पारिवारिक संबंधों में पतन तो हुआ ही साथ ही नयी व पुरानी पीढ़ी के विचारों की टकराहट से सामाजिक रीति-नीतियाँ भी टूटने लगीं , यही कारण है कि यह काल मूल्यों व संबंधों के विघटन का काल है ।

(ख) सामाजिक रीतियों के प्रति नया दृष्टिकोण : बौद्धिकता :-

नैतिक मूल्यों की टूटती हुई मान्याताओं के अन्तर्गत परम्परा के प्रति विद्रोह की चेतना में यह लक्ष्य किया जा चुका है कि समाज की परम्पराएं, लोक-विश्वास, मान्यताएं, रीति-रिवाज आदि अद्भुत होते हैं । अधुनातन समाज में उनके प्रति नये दृष्टिकोण विकसित हो रहे हैं । इन नये दृष्टिकोणों ने जीवन-मूल्यों को प्रभावित किया । कहा जा सकता है कि प्राचीन काल से प्रचलित रूढ़ियों ,धर्माडम्बरों, देवी-देवताओं व पीर-पैगम्बरों की पूजा आदि को महत्व दिया गया । विशेषतः ग्रामीण क्षेत्र में दैनिक कार्य-व्यपारों का आरम्भ लोक-विश्वासों, मान्यताओं, रीतियों आदि से किया जाता रहा है ।

उनके कार्यों व यात्राओं में मुहूर्तों आदि का महत्त्व रहा है । इस युग में सामाजिक तथा धार्मिक जीवन से संबंधित विचारों का लोप शनैः शनैः हो रहा है । क्योंकि आज व्यक्ति विज्ञान के युग में रहता है और जैसाकि कहा जा चुका है कि वह प्रत्येक वस्तु की परख भावात्मक आधार पर नहीं बल्कि बौद्धिक ,कसौटी पर करता है । यही कारण है कि आज सामाजिक तथा धार्मिक रीतियों-नीतियों के प्रति नये दृष्टिकोण बन रहे हैं, जिनका विवेचन यहाँ किया जा रहा है :-

ग्रामीण समाज में यात्रा की तिथियां, शादी विवाह तथा गौना आदि का मुहूर्त्त , गृह निर्माण मुहूर्त्त, खेत जोतना, बोना, काटना आदि विशिष्ट दिनों में शुभ माना जाता है । उसकी रीति-रिवाजों को वे महत्त्वपूर्ण मानकर स्वीकार करते हैं । किन्तु शिक्षित युवकों के कारण तथा सुविधानुकूल नियत तिथि पर वैज्ञानिक उपकरण न मिलने के कारण ग्रामीण जीवन में इन रीति-रिवाजों के प्रति धारणा टूट रही है । यही कारण है कि देश में सामाजिक रीति-रिवाज ज्ञानबोध के कारण टूट रहे हैं । और इसके साथ-साथ धार्मिक परम्परा, आध्यात्मिक मूल्य, अभिवृत्तियां, रीतियां व मूल्यों में तीव्र गति से परिवर्तन आ रहा है । आज का बौद्धिक वर्ग रीतियों धर्माडम्बरों और प्राचीन सामाजिक कठोर बंधनों से त्राण पाने के लिए इनके प्रति नया दृष्टिकोण बन रहे हैं । यही कारण है कि इनके प्रति वह नये चिन्तन से सोचने पर विवश हुआ । आज समाज में फैले धार्मिक शोषण, अनाचार, व्यभिचार, अकर्मण्यता, और अंध-विश्वासों के प्रति नये स्वर सुनाई दे रहे हैं । धार्मिक रूढ़ियों के कारण श्राद्ध, तीर्थ स्थान, व्रत, पूजा, पुजारी, पुरोहित , कर्म धर्म आदि स्वार्थ पूर्ण भावना से निहित इन समस्त रीति-रिवाजों व धारणाओं की सन् 1960 के बाद कड़ी आलोचनाएं की जाने लगीं । इसके कारण सामाजिक तथा धार्मिक रीति नीतियों में परिवर्तन आना स्वाभावित हो गया । फलतः हमारे जीवन मूल्यों को भी प्रभावित किया गया ।परिणामतः इस युग के समाज में फैले रीति-रिवाज अपना अस्तित्व समेटने लगे हैं ।

सामाजिक रीति-रिवाजों के प्रति, इस युग में, बौद्धिकता के कारण भी, नये दृष्टिकोण पनप रहे हैं । जहाँ एक ओर समाज में अभिवादन या शिष्टाचार या लोकाचार से संबंधित आचार व्यवहार टूटने लगे, वहाँ उनका प्रभाव सामाजिक रीति-रिवाजों पर भी पड़ा । ब्राह्मणों के प्रति "पायलागन" तथा दंडवत् प्रणाम का भाव भी कम होने से आचार-विचारों से संबंधित रीति नीतियां टूटने लगीं । इसीप्रकार सत्कार, सम्मान भावना, अतिथि प्रेम, विविध शुभावसरों पर भेंट इत्यादि देना, आदि शिष्टाचार समाज में विद्यमान हैं । शुभकामना, आशीर्वाद , निछावर आदि लोकाचार के अन्तर्गत आते हैं ।[28] युगीन जन-जीवन में ये किसी न किसी रूप में विद्यमान तो हैं किन्तु युवावर्ग में उनके प्रति नये दृष्टिकोण बन रहे हैं ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह लक्ष्य किया जा चुका है कि आधुनिक युग में पारिवारिक जीवन-मूल्यों तथा संबंधों एवं सामाजिक रीति-रिवाजों के विकास में शिक्षा, विज्ञान तथा औद्योगीकरण को ही श्रेय दिया जा सकता है क्योंकि व्यक्ति व्यस्तता व सह शिक्षा और आधुनिकता के कारण स्त्री-पुरुष सामाजिक रीतियो को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे हैं । यही कारण है कि समाज में अभी कुछ सामाजिक रीतियां टूटती जा रही हैं । और कुछ अभी ग्रामीण क्षेत्रों व कस्बों में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं । सन् 1960 के पश्चात् यह स्थिति प्रबल होती जा रही है । इन समस्त पारिवारिक संबंधों तथा सामाजिक व धार्मिक रीतियों पर युगीन परिवेश का प्रभाव प्रमुख रूप से पड़ रहा है । जैसाकि पूर्ववर्ती पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है कि प्राचीन काल से चली आ रही जाति व्यवस्था आधुनिक युग में आकर नष्ट होने लगी, और इसके स्थान पर वर्ग चेतना, पनपने लगी । जहाँ एक ओर शिक्षा और बड़े बड़े कल-कारखानों ने जाति व्यवस्था को तोड़ा, वहीं दूसरी ओर इनसे"वर्ग चेतना" का भी जन्म हुआ । इसके साथ साथ आर्थिक कारणों से भी अनेक वर्ग बने, उन पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जा रहा है :-

§ग§ वर्ग-चेतना :-

"वर्ग-चेतना" का प्रमुख कारण है - "अर्थ" । "अर्थ" ने सामाजिक परिपार्श्व में विभिन्नत जटिलताओं, समस्याओं, और विषमताओं को जन्म दिया । इसके कारण देशों में उच्चवर्ग, निम्नवर्ग और माध्यमवर्ग बने । इस युग में "अर्थ" ने राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक तथा धार्मिक ,वैयक्तिक मूल्यों को प्रभावित किया । और परम्परागत जीवन मूल्य इस युग में आकर वर्ग संघर्ष के कारण टूटने लगे । सामाजिक रीतियों, रूढ़ियों, प्रथाओं तथा धारणाओं के प्रति समाज में एक नये बौद्धिक वर्ग का जन्म हुआ । और उसका आर्थिक और सामाजिक जीवन-मूल्यों के प्रति नया दृष्टिकोण बना । यही कारण है कि इन मूल्यों के नये धरातल तथा नये चिन्तन की प्रक्रिया से जोड़ा गया । और उनके विषय में सोचा गया । जहाँ समाज में एक ओर ऊँच-नीच, असमानता, छूआछूत, अमीर-गरीब या धनिक वर्ग तथा गरीब वर्ग पनप रहे थे, वहाँ साठोत्तर युग में इनके प्रति नया दृष्टिकोण बना । और पिछड़े वर्ग तथा अनुसूचित वर्ग हेतु आर्थिक उन्नति का अवसर प्रदान किया गया । सद्भाव, मानवता, समता, समानाधिकार, सहयोग , तथा साहचर्य के मूल्यों का नया रूप उभरकर आया । मानवतावादी दृष्टिकोण ने नारी वर्ग, पिछड़े वर्ग तथा निम्न वर्ग को अधिक प्रोत्साहित किया । इससे व्यक्ति की प्रतिष्ठा होने लगी । इसप्रकार उदारता, स्वतंत्रता प्रतिष्ठा, आत्मविकास, सद्भाव आदि मूल्यों का विकास हुआ । यही कारण है कि आज समाज के स्थान पर व्यक्ति के उन्नति और विकास के नये मूल्य बन रहे हैं । वर्ग विषमता की किन प्रवृत्तियों ने जिन नये दृष्टिकोणों को निर्मित किया, वे इसप्रकार हैं :-

§1§ वैज्ञानिक विकास के कारण देश में बड़े बड़े कारखाने खुले, लघु उद्योग धंधे धन्धे, दस्तकारी, हस्त बुनाई व कढ़ाई के काम मशीन के काम के आगे जन-साधारण में कोई मूल्य नहीं रहा । इसके साथ ही कुटीर धन्धे भी नष्ट हो चले जिसके कारण गाँव का मजदूर शहर आकर श्रमिक वर्ग के रूप में उभरने लगा ।

§2§ कलकारखानों का प्रभाव कृषि पर पड़ा, जिससे गाँव का खेतिहर बेकार होकर रोजी-रोटी की तलाश में शहर आने लगा । कहना न होगा कि कृषि कीदुर्दशा , जमींदार शोषण जो आज भी किसी न किसी रूप में बना हुआ है , अकाल , भूख से पीड़ित गाँव का किसान वर्ग कारखानों का मजदूर बन गया ।

§3§ उक्त परिस्थियों से पीड़ित गाँव शिक्षात का वर्ग भी बाबूपन क्लर्की तथा अफसरी की नौकरी के लिए निकल पड़ा । औद्योगीकरण के कारण पूंजी-पति और मजदूर व श्रमिक वर्ग का जन्म हुआ । पूंजीपति या उद्योगपति की धन लोलुपता तथा मज्दूर वर्ग का बोनस, आदि कारण। वर्ग संघर्ष का कारण बना गया । इससे सामाजिक तथा नैतिक मूल्य तो विखण्डित हुए ही किन्तु उनके स्थान पर वर्ग चेतना का जन्म भी हुआ । मजदूर एकता, संगठन, सहयोग संघ §यूनियन§ सद्भाव, आदि नये मूल्यों का भी विकास हुआ । मार्क्सवादी प्रवृत्ति ने अर्थ वितरण में विराट रूप धारण कर रहे हैं । कारीगर वर्ग, बढ़ई वर्ग, अनुसूचित वर्ग नये वर्ग बने ।

§4§ युगीन परिवेश में ~~छब~~ शिक्षा के माध्यम से छात्र वर्ग , बुद्धिजीवी वर्ग का जन्म हुआ । आरक्षण को लेकर सरकार तथा छात्र वर्ग में नित्य नये संघर्ष होते रहे हैं । औद्योगिक , कल-कारखाने में मजदूर संघर्ष, और छात्र संघर्ष ने "हड़ताल" नये मूल्य के रूप जन्म दिया है । अतः उक्त विवेचन से प्रकट है कि आरक्षण तथा समानाधिकार की मांग, अर्थ का समान वितरण आदि नये मूल्य तो एक और समाज में विकसित हो रहे हैं । तो दूसरी ओर नैतिक मूल्यों की मान्यताएं टूट रही हैं और इसका प्रभाव सामाजिक प्रवृत्तियों पर भी पड़ रहा है ।

निष्कर्ष :-

पूर्ववर्ती पृष्ठों में विवेच्य सामग्री के आधार पर कहा जा सकता है कि समकालीन परिवेश में पारिवारिक संबंधों का पतन और नये आयाम तथा सामाजिक रीतियों के प्रति नये दृष्टिकोण से सम्बन्धित विवेचन से प्रकट है कि यह युग विविधि परिवर्तनों तथा मूल्य संक्रमण का काल है । इसके अतिरिक्त निष्कर्ष रूप में समकालीन जीवन-मूल्यों के विषय में निम्नलिखित तथ्य प्रकाश में आते हैं :-

इस काल के जन-सामान्य का जीवन भौतिक मूल्यों से आक्रान्त होने पर आदर्शों , धार्मिक , नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों में परिवर्तन आया । लोकहित, जन-कल्याण , एकता, सद्भाव, भाईचारा , समानता आदि मूल्यों को गोष्ठी, विश्व सम्मेलन तथा अन्तर्राष्ट्रीय खेलों के माध्यम से स्थापित किया जा रहा है । इस प्रकार सशक्त वैज्ञानिक साधनों तथा चेतना के उक्त व्यापक धरातल के कारण सुदूरवर्ती देश या क्षेत्र के मानव समुदाय को सरलता से परस्पर मिल सकते हैं । इससे विकसित अन्तराविलम्बन आधुनिक जीवन मूल्यों के विकास का उपयुक्त अवसर प्रदान करता है ।

वैज्ञानिक विकास, औद्योगिकरण तथा उसकी तकनीकी प्रगति ने सिन्देह पारिवारिक संबधों को नये आयाम प्रदान किये । इसके और शिक्षा के कारण एक सीमा तक अनेक विकृतियाँ भी उत्पन्न हो गयी हैं । इसके प्रभाव के कारण भाई-बहन का संबंध, माता-पिता का संबंध तनावयुक्त व अपरिचित होते जा रहे हैं । पति-पत्नी कीबढ़ती हुई भौतिकवादी प्रवृति ने उनके जीवन-मूल्यों तथा संबंधों को तनाव व कुण्ठायुक्त बना दिया है । प्रेम, स्नेह, ममता, वात्सल्य, सद्भाव परहित आदि "स्व" की भावना के कारण टूट रहे हैं ।

यद्यपि परिवेश में गांवों व कस्बों में अन्य रीतियां, मान्यताएं तथा धारणाएं विभिन्न रूपों में नवीनता लिए हुए विद्यमान हैं, तथापित शहरों व नगरी जीवन में इनका अस्तित्व प्राय: लुप्त होता जा रहा है । लोकाचार शिष्टाचार तथा आध्यात्मिक जीवन-मूल्यों के प्रति वैज्ञानिक युग धारणा बदल रही है ।

§3§ <u>वैयक्तिक चेतना</u> :-

जैसाकि पूर्ववर्ती पृष्ठों से स्पष्ट है कि टूटते संयुक्त परिवारों, तथा समाज की अपेक्षा व्यक्ति की महत्ता के कारण वैयक्तिक चेतना स्वत: ही उद्भूत हुई , इसके अतिरिक्त आधुनिक शिक्षा, स्वार्थवृति तथा आर्थिक आदि अन्य परिस्थितियों के कारण भी वैयक्तिक चेतना को बढ़ावा मिला । जैसाकि

पहले विवेचन किया जा चुका है कि सन् 1960 के बाद बदलती हुई परिस्थितियों के कारण व्यक्ति के समक्ष असन्तुलन तथा असामंजस्य की स्थिति उपस्थित हो गई । इसी कारण व्यक्ति आत्म केन्द्रित होता चला गया । इसके साथ साथ ही उसमें बौद्धिकता का विकास होता गया । फलतः सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों का ह्रास होना स्वाभाविक हो गया । इसके अतिरिक्त वैयक्तिक चेतना को प्रभावित करने वाली प्रवृत्तियां इस प्रकार है ।

(क) बौद्धिकता और उसका प्रभाव :-

इस युग का मानव बौद्धिकता से आक्रान्त है । और वह प्रत्येक वस्तु का मूल्यांकन बौद्धिक धरातल पर कर रहा है । विज्ञान भी इसी की देन है । इसके कारण मानव व्यवहारों में यांत्रिकता आती जा रही है । यही कारण है कि परिवार के व समाज के भावात्मक सम्बन्ध भी बौद्धिकता की कसौटी पर कसे जा रहे हैं । जिससे उनमें टकराव की स्थिति पैदा हो गयी है । बौद्धिकता के फलस्वरूप आत्मकेन्द्रित होता जा रहा है । यह आत्मरति की प्रवृत्ति उसे संकीर्ण घेरों में सीमित कर रही है । दया, ममता, सहानुभूति , करूणा, प्रेम, सहयोग आदि मूल्य आज अर्थहीन से प्रतीत हो रहे हैं । बौद्धिक उन्मेष के साथ ही व्यक्तिवाद का जन्म हुआ । व्यक्ति "पर" को छोड़ अपने "स्व" व अहम्" में लिप्त हो गया । इस अस्तित्ववादी विचारधारा ने उसे भौतिक सुखों के प्रति आकर्षित किया । सीमित साधन व असीमित इच्छाओं के कारण उसमें असन्तोष , तनाव , कुण्ठा की स्थिति आई , जिसमें आज का बुद्धिवादी या बौद्धिक वर्ग जी रहा है , और अर्थहीन प्राचीन मूल्यों को तोड़ रहा है ।

(ख) विज्ञान की उन्नति के कारण विकसित नया दृष्टिकोण : तज्जन्य परिस्थिति :-

जैसाकि पूर्ववर्ती पृष्ठों में विवेचन किया जा चुका है कि विज्ञान

की उन्नति एवं शिक्षा के कारण व्यक्ति का सांस्कृतिक , धार्मिक ,आध्यात्मिक व सामाजिक मूल्यों के प्रति नया दृष्टिकोण बन रहा है । वैज्ञानिक अविष्कारों के कारण समाज में द्रुतगति से परिवर्तन आ रहा है । व्यक्ति के दैनिक जीवन को वैज्ञानिक उपलब्धियों ने प्रभावित किया है । उसका जीवन स्तर ऊँचा उठा । रहन-सहन, विचारों एवं भावनाओं में परिवर्तन की स्थिति आई । इससे वह भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति आकर्षित होने लगा । फलत: सांस्कृतिक ,और सामाजिक मूल्य टूटने लगे । यही नहीं विज्ञान ने समाज में फैली कुरीतियों, रूढ़ियों तथा अंध-विश्वासों पर प्रहार किया । इसी के साथ ही इससे विकसत बौद्धिकता ने मानवीय सम्बन्धों को तर्कशील बना दिया । अत: व्यक्ति चारों दिशाओं से टूटता हुआ , कुण्ठाग्रस्त, अशान्त , लघु , मूल्यहीन व शारीरिक परिश्रमहीन हो गया । इसीलिए परम्परागत जीवन-मूल्यों को अस्वीकृति की दृष्टि से देख रहा है ।

{ग} <u>मानसिक कुण्ठाएं, तनाव इत्यादि की स्थिति :-</u>

व्यक्ति ज्यों ज्यों सुख साधनों की ओर आकर्षित होता गया, त्यों त्यों उनके मन में स्पर्द्धा की भावना जागृत होती गयी और उन वस्तुओं की प्राप्ति न होने पर उसकी मानसिक स्थिति तनावयुक्त हो गयी । आधुनिक व्यक्ति अन्य अनेक जटिलताओं तथा अन्तर्विरोधों के साथ से गुजर रहा है और वह उन विषम परिस्थितियों के सामंजस्य न कर पाने के कारण उसकी मानसिक कुंठा तथा तनाव बढ़ रहा है । जैसाकि स्वाधीनता के समय सभी वर्गों ने सुखें-सुविधाओं का सपना देखा था किन्तु आज उनके पूरा नहीं होने के कारण , और देश में बढ़ती हुई आर्थिककठिनाई , राजनैतिक गतिविधियों तथा आपाधापी में स्वार्थ वृत्ति के उभर आने पर, योग्य व्यक्ति उससे वंचित रह जाता है । इसका प्रभाव मध्यम वर्ग के व्यक्ति पर सबसे ज्यादा पड़ा । डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय का मत है कि "स्वतंत्रत भारत मध्यवर्गीय बुद्धिजीवी टैबूज और रूढ़ियों को तोड़ने की बलवती इच्छा रखते हुए भी अपने को विवशता बना हुआ पाता है , जिसके फलस्वरूप उसमें कुंठा

एकाकीपन, अजनबीपन, घुटन, निरूद्देश्य, नपुंसक, आक्रोश आदि मानसिक स्थितियां उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती ।"[29] यही कारण है कि आज मध्य वर्ग ने प्राचीन जीवन मूल्यों के प्रति सोचा तथा उसमें ही हीनता के भाव उत्पन्न सबसे अधिक हुए । अतः कहा जा सकता है कि आज की विषम स्थिति में समाज तथा व्यक्ति दोनों ही टूट रहे हैं । "आज का मनुष्य एक ऐसे समाज में रह रहा है , जहां वह भीतर और बाहर से दोनों तरफ से टूटरहा है । वह संघर्षरत है और पराजय से आतंकित, टूटते हुए व्यक्ति और उनके बिखरते हुए समाज और खोखले मूल्यों के साथ संघर्ष कर रहा है ।"[30] अतः आज का व्यक्ति अनेक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के साथ जी रहा है । एक ओर बढ़ती हुई महगाई , बेराज़गारी, आर्थिक विषमता, स्वच्छन्द यौन वृति दाम्पत्य जीवन के बीच मनमुटाव आदि की स्थिति को पाकर आधुनिक व्यक्ति अधिक कुण्ठाग्रस्त ,अकेलेपन की भावना तथा तनावयुक्त हो रहा, तो दूसरी ओर वह सांस्कृतिक, सामाजिक, व्यक्तिबत तथा नैतिक आदि जीवन-मूल्यों को अस्वीकार कर रहा है । राजनीतिक वातावरण की आपा-धापी में बढ़ती हुई अनियमितता, मूल्यहीनता, अनुशासनहीनता, बेकारी आदि ने सीधी चोट आर्थिक मूल्यों पर की । इससे एक अनवरत बेचैन, भटकाव, टकराहट, कुण्ठा और तनाव की स्थिति आ गयी । आज कैवातावरण में विशेषकर मध्यम वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप से घुटन, टूटन, सूनापन आदि का महसूस कर रहा है ।[31]

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि व्यक्ति चेतना के कारण स्त्री-पुरूष के आपसी संबंधों में विविध परिवर्तन हुए । इसने हमारे सामाजिक, व्यक्तिगत, धार्मिक तथा राजनीतिक मूल्यों को विशेष रूप से प्रभावित किया । व्यक्ति की स्वार्थ भावना के विकास ने "स्व" भावना को उत्पन्न किया । हां, एक ओर विज्ञान से विकसित बौद्धिक चेतना ने सदियों, अंध-विश्वासों तथा अनेक परम्पराओं को तहस-नहस किया तो वहां दूसरी ओर व्यक्ति

आर्थिक विषमता, दाम्पत्य जीवन के मनमुटाव तथा फैशन परस्ती होने से शिक्षित व्यक्ति कुंठाओं तथा तनावों से युक्त हो गया । क्योंकि आज शिक्षा अर्थ से इतनी जुड़ती जा रही है कि व्यक्ति उसे सहज रूप में प्राप्त कर नहीं सकता । बढ़ती हुई प्रशासनिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में अनुशासनहीनता तथा स्वार्थपूर्ण वातावरण ने देश में भ्रष्टाचार, बेकारी, मूल्यहीनता, मँहगाई आदि को बढ़ाया । वैयक्तिक चेतना ने व्यक्तिगत जीवन में स्वच्छन्द यौन वृत्ति, और स्वार्थवृत्ति को बढ़ाया । नेता तथा नौकर वर्ग अपना ही भला चाहता है । इससे अर्थगत स्थिति इतनी बदल गयी कि बेरोजगार शिक्षित युवावर्ग अनेक हीन भावनाओं तथा कुंठाओं का शिकार होता जा रहा है । अत: नारी की आत्मनिर्भरता आधुनिक फैशनवृत्ति, उच्चतर जीवन का मोह, आत्म-प्रतिष्ठा, यौन चेतना , आर्थिक तथा राजनैतिक प्रवृत्तियों ने व्यक्तिगत , सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा नैतिक जीवन मूल्यों को प्रभावित किया और वैयक्तिक चेतना ने संत्रास, घुटन तथा उत्पीड़न आदि को जन्म दिया ।

§4§ राजनीतिक और आर्थिक प्रवृत्तियां :-

यह पूर्ववर्ती पृष्ठों में दृष्टिगत है कि राजनीतिक व आर्थिक प्रवृत्तियों ने जीवन-मूल्यों को प्रभावित करने वाली अनेक प्रवृत्तियों को जन्म दिया । यहाँ हम आर्थिक जीवन, औद्योगिककरण, नयी वर्ग चेतना, और राजनैतिक गतिविधियों और उनसे विकसित चेतना और जीवन मूल्य की चर्चा करेंगे :-

§क§ आर्थिक जीवन, औद्योगीकरण और नयी वर्ग चेतना :-

आज का जन-जीवन आर्थिक संकट से सबसे अधिक प्रभावित रहा है , जो युगीन परिस्थितियों का एक महत्वपूर्ण अंग है । "अर्थ" युग सत्य है । इसी "अर्थ" को लेकर तत्कालीन युग में "वर्ग" बने, जो आज के औद्योगिक वातावरण में संघर्ष का कारण बने हुए हैं । "अर्थ" प्राप्ति हेतु व्यक्ति वर्गों तथा राष्ट्रों में निरन्तर संघर्ष हो रहा है । आज प्रत्येक राष्ट्र, वर्ग और व्यक्ति इस

संघर्ष की प्रक्रिया से गुजर रहा है । यह कहना न होगा कि राष्ट्र के विकास का आधार संतुलित अर्थ व्यवस्था होती है , किन्तु अर्थ के असम्मान वितरण व विषमता के कारण आज अनेक दुष्प्रवृत्तियां यथा भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, वर्ग संघर्ष आदि ~~कबक~~ बलवती होती जा रहा हैं । पूंजीपति वर्ग ,निम्न वर्ग पर हावी है, जिससे नित्यप्रति हड़ताल, तालाबंदी आदि घटनायें देखने को मिलती हैं । देश की आर्थिक व्यवस्था सुधारने के लिए पंचवर्षीय योजनायें , कृषि सुधार, कुटीर उद्योग-धन्धों व कल-कारखानों को बढ़ावा आदि, योजनायें बन रही हैं किन्तु भ्रष्टाचार व अनैतिकता के कारण इनका परिणाम सफलताजनक नहीं मिल रहा है । आर्थिक विषमता ज्यों की त्यों बनी हुई है और इसने व्यक्तिगत सामाजिक, धार्मिक तथा नैतिक मूल्यों को प्रभावित किया है ।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में औद्योगीकरण तथा वर्ग चेतना के विषय में कह चुके हैं । इसके अतिरिक्त आधुनिक युग में औद्योगीकरण ने कृषि को व्यापक रूप से हानि पहुंचाई । देश में बड़ें बड़े कारखने खुले और लोग गांवों को छोड़कर शहरों की ओर भागने लगे । बेकार व गरीब किसान शहर आकर मजदूर व श्रमिक वर्ग बनता गया । थोड़ा पढ़ा लिखा युवक क्लर्क व बाबू वर्ग बनता गया तथा उद्योगपति पूंजीपति वर्ग कहलाने लगा । इसप्रकार औद्योगिक व्यवस्था ने इस "वर्ग" की नींव और अधिक सुदृढ़ कर दी । और वर्ग संघर्ष तीव्रता होता जा रहा है । इसमें मध्यम वर्ग विशेषत: निम्न मध्यम वर्ग बुरी तरह पिस रहा है । वह बुद्धिवादी होने के कारण और अधिक तनाव, कुण्ठा व असंतोष का अनुभव कर रहा है । इसप्रकार औद्योगीकरण ने जहां एक ओर हमारी कुप्रथाओं जातिगत भावना आदि को नष्ट किया है , वहीं दूसरी ओर, संयुक्त परिवारों नैतिक मूल्यों तथा उत्पन्न मकान समस्या के कारण परम्परागत प्राचीन संस्कृति व शिष्टाचार का भी ह्रास किया है । किन्तुं आज औद्योगिक नई व्यवस्था ~~कककक~~ के अन्तर्गत कारखाने का मालिक या पूंजीपति समाज में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति है । वह अर्थ संचय में व्यस्त है तो दूसरी ओर श्रमिक वेतन तथा बोनस की ~~कककक~~ मांग के लिए हड़तालें कर रहे हैं ~~।~~ इस संघर्ष में नेता वर्ग, लाभान्वित

हो रहा है । आज राजनीति विभिन्न गतिविधियों के कारण हमारे सामाजिक आर्थिक तथा नैतिक व आध्यात्मिक जीवन-मूल्य टूटने लगे और समानता, स्वतंत्रता, समाज कल्याण के मूल्यों का जन्म हुआ ।

(ख) राजनीतिक गतिविधियां और उनसे विकसित चेतना और जीवन मूल्य :-

जैसाकि दृष्टिगत किया जा चुका है कि देश की स्वाधीनता का अर्थ साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, आर्थिक और सामाजिक शोषण से पीड़ित जनता को मुक्ति दिलवाना और मानवतावाद की स्थापना कर नवनिर्मात्मक कार्यों द्वारा लोगों का हित व कल्याण करना था । और राजनीति का भी लक्ष्य यही था । नेता, जनता द्वारा , कर्तव्यनिष्ठ होकर राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य करवाते और देश के अन्तर्विरोधों को शान्त करने में सहायता देते थे । किन्तु आज स्वार्थ व कुर्सी की लोलुपता में देश में अनेक अन्तर्विरोध राजनीतिक स्तर पर उभर रहे हैं, जिससे देश में नित-नवीन आर्थिक कठिनाईयां उत्पन्न हो रही हैं । यह हम लक्ष्य कर चुके हैं कि सरकार द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण करना, प्रजातंत्र तथा व्यक्ति स्वातंत्र्य की स्थापना और उसके मौलिक अधिकारों की रक्षा करना, उत्पादन बढ़ाना, रोजगार के अवसर प्रदान करना, आदि उनके कानून बनाये गये । प्रत्येक नागरिक को, बराबरी का दर्जा, अवसर की समानता, विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, संस्थान के निर्माण की स्वतंत्रता, वर्ण एक्य की स्वतंत्रता, स्वधर्म पालन और प्रचार की स्वतंत्रता आदि मूल्य प्राप्त हुये ।

आज देश की राजनीतिक गतिविधियों ने आर्थिक विषमता को बढ़ावा दिया । उत्पादन की क्षमता बढ़ी तो साथ ही मंहगाई, कीमतें, वस्तु अभाव आदि की कठिनाई जनता के समक्ष आने लगी । इन कठिनाईयों ने जमाखोरी मुनाफाखोरी और भ्रष्टाचार आदि दुष्प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित किया और चुनाव प्रक्रिया में भाई-भतीजावाद, प्रान्तीयतावाद, जातीयता, भाषा वाद, आदि प्रवृत्तियों को जन्म दिया । नौकरशाही प्रवृत्ति ने अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए स्वार्थपूर्ण नीति अपनाई, इससे देश की अर्थ व्यवस्था टूटने

लगी । राजनीति के क्षेत्र में जहां एक ओर किसान, कमजोर वर्ग तथा पिछड़े वर्ग में चेतना आई तो दूसरी ओर ममता, दया, करूणा, अहिंसा, सत्य, समता व निस्वार्थ सेवा तथा विश्व मैत्री आदि के मूल्य टूटने लगे । राजनीतिक जीवन में परिवर्तन आ गया । आज राजनीतिक स्तर पर शहर-शहर, गांव-गांव में नेताओं की भीड़ लगी हुई है । अनेक समितियां, किसान सभा, मजदूर संगठन, ग्राम पंचायत, अन्य सरकारी योजनाएं भी राजनीतिक बल पर चलाई जाने लगी । इस वातावरण ने ग्रामीण आदर्श आचार-विचार, सौम्य व्यवहार एवं यथार्थ की सीमाओं को लांघता हुआ ,नये प्रश्नों, नयी सम्भावनाओं एवं नयी दिशाओं को संधान किये हुए है । कहना न होगा किइस राजनीतिक गतिविधियों ने गांवों में घुटन, टूटन, कटुवाहट ईर्ष्या एवं अनेक समस्याओं को जन्म दिया । यही नहीं हमारे, दया, धर्म, करूणा, ममता, मातृत्व पितृत्व, शिष्टाचार, लोकाचार, सन्तान भावना, सहानुभूति, सद्‌भाव आदि शाश्वत मूल्यों में परिवर्तन आया । साम्यवाद, समाजवाद, कम्युनिस्टवाद, जनसंघ, जनता पार्टी, भारतीय क्रान्ति दल, कांग्रेस आदि पार्टी एक दूसरे पर कीचड़ उछाल रही हैं और जनता को झूठा आश्वासन देकर मंत्री पद तक पहुंच रहे हैं । "गरीबी हटाओ तथा समानता" के नारेबाजी आये दिन हो रहे है । क्या इन झूठे तथा आदर्शहीन नारों से देश क्या उन्नति करेगा ? यह प्रश्न सामने आ खड़ा होता है ।

अतः हम कह सकते हैं कि आज देश की राजनीतिक गतिविधियां इतनी विषैली हो गयी है कि रूपयों की थैलियों में आज के राजनीतिज्ञ बिक रहे हैं । उनकी प्रतिष्ठा बिक रही है , उनका आदर्श तथा चरित्र कहां ? पूंजीपतियों के बीच सौदाबाजी से जनता का विश्वास उठ गया है । जनता से चुनाव जीतने के लिए मतदान खरीदे जा रहे हैं । राजनीतिज्ञ और कर्मचारी दोनों मिलकर जनता से रूपया ऐंठते हैं । धन लालच में राजनीतिज्ञ दल-बदल करते हैं । जनता के समक्ष उनका न तो चरित्र ही है और न प्रतिष्ठा व

सम्मान । अतः कहा जा सकता है कि राजनीतिक चेतना के आधार पर धार्मिक व्यक्तिगत सामाजिक, राजनीतिक तथा नैतिक मूल्यों का पतन सर्वत्र दृष्टिगोचर है । इस वातावरण और दूषित प्रवृत्तियों ने देश की एकता, स्वतंत्रता, समानता, राष्ट्रीयता, अर्थ व्यवस्था आदि को धका लग रहा है । और आर्थिक दृष्टि से देश दिनोंदिन कमजोर होता जा रहा है ।

निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि - युगगत जीवन-मूल्यों को सर्वाधिक प्रभावित करने वाली प्रवृत्तियों का निरूपण निम्नलिखित किया जा रहा है :-

युगगत बदलती हुई परिस्थितियों से व्यक्ति के जीवनादर्श और जीवन दृष्टि के मानदण्ड में अन्तर आया । व्यक्ति चेतना तथा नारी स्वातंत्र्य भावना के कारण स्वच्छंद यौन चेतना आई । युवा-युवकों के एक साथ कल कारखानों, दफतरों तथा उद्योगों में कार्य करने से नैतिक पतन होने लगा । सदियों से चले आ रहे हमारे जीवन-मूल्य, मानदण्ड तथा उनके स्वरूप में निर्माण विकास एवं परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है । व्यक्ति के पवित्रता विवाह तथा जातीयता के बंधन के प्रति नये आचार-विचार संकल्प तथा नये दृष्टिकोण बने । उसने उक्त समस्त प्रवृतिगत विशेषताओं ने नैतिकता की मान्यताओं को नकारा ।

साठोत्तर युग की सबसे बड़ी विशेषता यह भी रही कि सामाजिक जीवन-मूल्यों को प्रभावित करने वाली मान्यता, धारणा, संकल्प, प्रतिमान, आदर्श, सामाजिक रीति रिवाज, सामाजिक वर्गों के नये प्रतिमान कीप्रवृत्तियाँ हैं । सामाजिक जीवन-मूल्यों के टूटन में "वर्ण-व्यवस्था" भी रही है । जो आज आर्थिक धरातल पर वर्ग चेतना के रूप में उभरी है । ये सामाजिक स्तर पर नयी बौद्धिकता तथा वैज्ञानिक विकास के कारण टूट रही है । विज्ञान से प्राप्त अनेक सुलभ साधनों ने व्यक्ति को सुख-सुविधा की ओर प्रेरित किया ।

यातायात के साधनों से नये संबंध व रिश्ते बने, जिसके फलस्वरूप पारिवारिक संबंधों तथा मूल्यों का पतन हो गया ।

3. समाज में उंच-नीच वर्ग व्यवस्था के भेदभाव दूर हुए , जमींदारी तथा सामन्तशाही जीवन का पतन हुआ और समाजवादी चेतना ने कृषि उत्पादन के साधनों पर महत्व देकर, समानता, एकता, पिछड़ेवर्ग का हित आदि के तत्वों की स्थापना की । सरकार द्वारा आरक्षण की सीमा को और वृद्धि कर उनके हित व उन्नति के किये । इस आरक्षण समस्या ने वर्ग भेद की दो श्रेणियाँ उच्चवर्ग तथा निम्नवर्ग की बना दी । भारतीय समाज का उच्च वर्ग आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से इतना सम्पन्न है कि किसी भी प्रकार की मान्यताओं तथा धारणाओं को निसंकोच तोड़ रहा है और नयी मान्यताओं, नेय विचारों आचारों, नयी धारणाओं को अपनी सुविधानुसार निर्माण करने में लगा हुआ है ।

4. राजनीतिक और आर्थिक दबाव के कारण सामाजिक परिवर्तनों के साथ व्यक्ति भी बदल रहा है । मुख्यत: वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा बौद्धिकता के विकास के साथ साथ नैतिक मूल्यों का पतन हुआ, विज्ञान तकनीकी प्रगति औद्योगीकरण और मशीनीकरण व शहरीकरण के कारण ग्राम चेतना आई और उनमें नयी मानसिकता तथा वैचारिकता के सन्निवेश होने से , उनके आचार विचार, अवधारणाएं, शिष्टाचार, लोकाचार तथा आदर्शों में नया विकास हो रहा है किन्तु वैज्ञानिक युग में निम्न वर्ग का व्यक्तित्व दबा-सा रह गया है । आज की आर्थिक परिस्थितियों में जो जितना गरीब है वह और गरीब होता जा रहा है , जो अमीर है वह उतना ही धनी होता जा रहा है । इन राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों हमारे जीवन-मूल्यों ने तो विघटन किया ही किन्तु इसके साथ साथ हमारे संबंधों तथा व्यक्ति मन को विकृत बना दिया । कहना न होगा कि आज की राजनीतिक गतिविधियाँ और आर्थिक विषमता ने परम्परागत जीवन-मूल्यों को प्रभावित ही नहीं किया

अपितु उनका विकास, निर्माण तथा परिवर्तन भी किया । अतः हम उक्त विवेचन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि हमें युगीन परिवेश में परम्परागत ,विकसनशील और नये मूल्य प्राप्त होते हैं , जिनका साठोत्तरी के हिन्दी उपन्यासों में अंकन विशेष रूप से मिलता है ।

पूर्वनिर्दिष्ट पृष्ठों के विवेचन से प्रकट है कि सन् 1960 के पहले परम्परागत जीवन-मूल्य प्राप्त होते हैं, जबकि सन् 1960 के पश्चात् ये विशेष परिस्थितियों के संदर्भ में विकसित हुए इसी आधार पर समकालीन युग में उपन्यासकारों की दो कोटियां बन जाती हैं :-

प्रथमतः वे उपन्यासकार जो प्रेमचन्दोत्तर काल से लेकर सन् 1960 के बाद तक सततः लेखन में सक्रिय रहे । ऐसे लेखकों की कृतियों में परम्परागत जीवन-मूल्यों और आदर्शों के प्रति झुकाव की प्रवृत्ति पाई जाती है । यथा- नरेश मेहता आदि

द्वितीयतः वे उपन्यासकार, जिन्होंने सन् 1960 के बाद के {जीवन} नये परिवेश का यथार्थ चित्रण किया । इनकी कृतियों में टूटते हुए परिवेश के साथ नवीन विकसित जीवन-मूल्यों का अंकन मिलता है । यथाः- मोहन राकेश, निर्मल वर्मा आदि । अतः उक्त कोटियों के उपन्यासकारों की कृतियों का अनुशीलन व्यक्तिगत, आध्यात्मिक , सामाजिक और राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन-मूल्यों के आधार पर करेंगे ।

-::-

संदर्भ - सूची

1- डा0 सन्तोष कुमार तिवारी - छायावादी काव्य में प्रगतिशील चेतना, पृष्ठ 7

2- उपरिवत् - ,, ,, , पृष्ठ 3

3- डा0 रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय : पृष्ठ 446

4- डा0 चण्डी प्रसाद जोशी - हिन्दी उपन्यास : सामाशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ 9

5- डा0 हुकुम चन्द - आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य : पृष्ठ 108

6- डा0 रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय : पृष्ठ 589

7- राम रतन भटनागर - निराला और नव जागरण : पृष्ठ 25

8- "It may be justify be said that Indians desting was unchanged by him........"-Raman Rolland: The Prophets of the New India, Page : 460

9- केसरी नारायण शुक्ल - आधुनिक काव्य धारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृष्ठ 44

10- उपरिवत् - ,, ,, ;;, पृष्ठ 44

11- डा0 परशुराम शुक्ल विरही - आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद, पृष्ठ 118

12- डा0 रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 441

13- डा0 चण्डी प्रसाद जोशी - हिन्दी उपन्यास का समाजशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ 91

14- डा0 रामधारी सिंह दिनकर - संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 440

15- डा0 विश्वनाथ नरवणे : अनु0- नेमिचन्द्र जैन, आधुनिक भारतीय चिन्तन, पृष्ठ 66

16- "बीसवीं सदी के आरम्भ में सांस्कृतिक पुनर्जागरण और सुधारवाद की जो प्रबल लहर भारत में परिव्याप्त हुई थी, वह नैतिक और आचरणवादी मूल्यों को स्वीकारती थी ।" गंगा प्रसाद, प्रेम चन्द ,पृष्ठ 81

17- डा० बलभद्र तिवारी - आधुनिक साहित्य : व्यक्तिवादी भूमिका, पृष्ठ 113

18- British Rule Produced radient and lasting changes in India Society and Culture.-M.N.Shri Niwas; Social Changing in Modern India, Page 46

19- राम रतन भटनागर - निराला और नवजागरण , पृष्ठ 25

20- डा० चण्डी प्रसाद जोशी - हिन्दी उपन्यास :समाजशास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ 24

21- डा० महाजन और डा० सेठी- भारत को संवैधानिक इतिहास, पृष्ठ 389

22- लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

23- डा० महेन्द्र चतुर्वेदी - हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण - पृष्ठ 106

24- डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 230

25- उपरिवत् - ,, ,, ,, पृष्ठ 78

26- विमल सहस्त्र बुद्धे: हिन्दी उपन्यासों में नारी का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण , पृष्ठ 216

27- उपरिवत् : ,, ,, पृष्ठ 217

28- डा० मदन गोपाल गुप्त - मध्यकालीन काव्य में संस्कृति - पृष्ठ 501

29- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 74

30- ,, ,, ,, , पृष्ठ 178

31- ,, ,, ,, , पृष्ठ 13

-::-